# सोमसी

जुलाई ८९

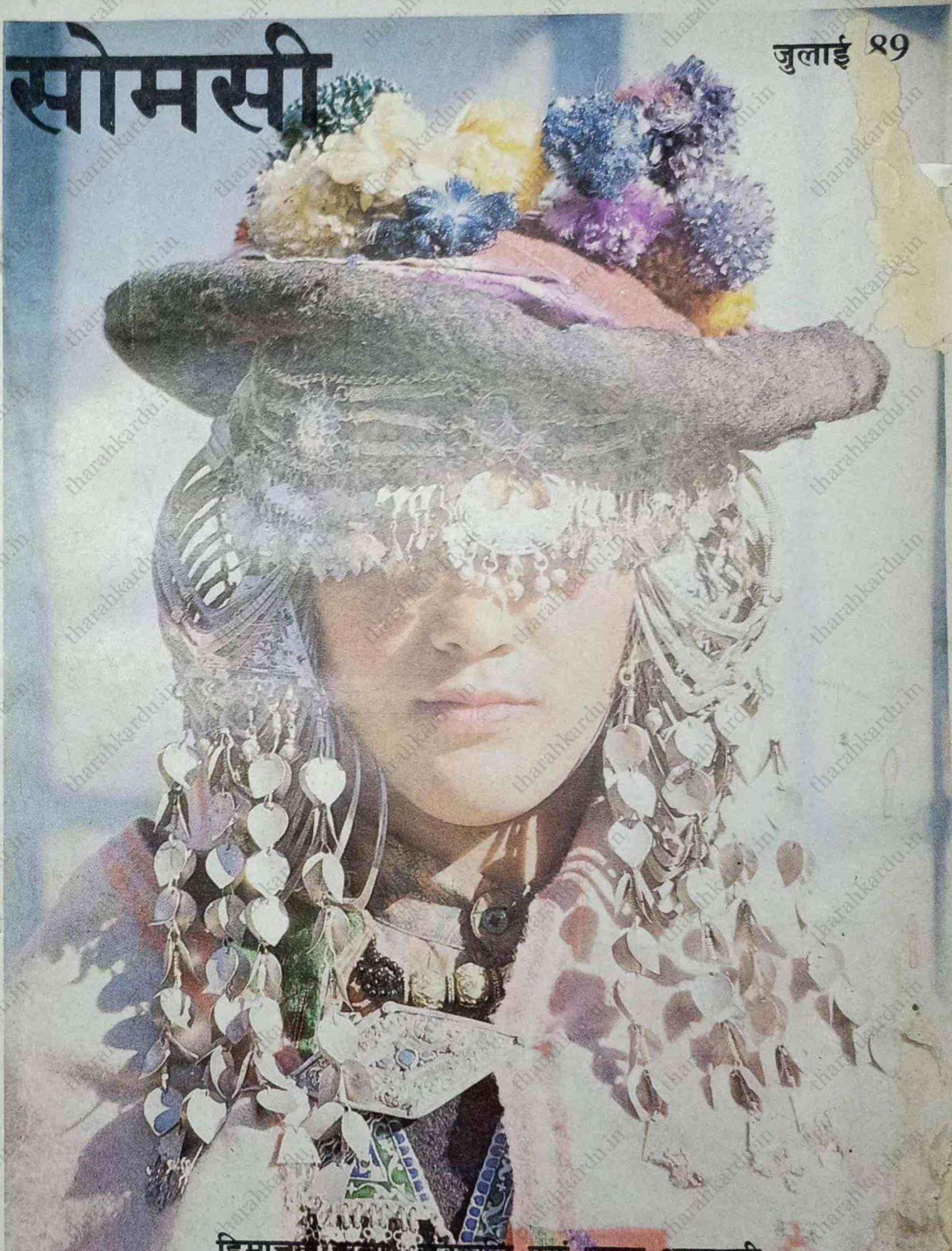

हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी

tharahkardu.in

आवरण पृष्ठ — किन्नरी बाला - पारंपरिक आभूषण पहने हुए।
ऊपर का चित्र — किन्नरी लोक दल के कुछ कलाकार

वर्ष : 15 अंक 3 पूर्णांक : 59
जुलाई - 1989 : आषाढ़-श्रावण 1910 : शक : 2046 वि०

# सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की त्रैमासिक शोध पत्रिका

संपादक
डॉ. बंशीराम शर्मा

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

tharahkardu.in

संपादक
व प्रकाशक

डॉ. बंशीराम शर्मा
सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171 001

संयुक्त संपादक — सरोज सांख्यायन
उपसंपादक — जयवन्ती चौहान
प्रकाशन सहयोग — कर्म सिंह
प्रूफशोधन — निर्मल कौशल

त्रैमासिक — जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य
पारदर्शियां — हिमाचल अकादमी संग्रह (प्रलेखन)

वार्षिक मूल्य : 12/- बारह रुपये
एक प्रति : 3/- तीन रुपये

जुलाई, १९८९

प्राप्ति स्थान: हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, संगरमल भवन,
क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171 001


---

सोमसी में प्रकाशित रचनाओं में दिए गए तथ्यों से संपादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

# अनुक्रम


| क्र.सं. | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | श्री महिषासुरमर्दिनी हाटकेश्वरी | सी.आर.बी. ललित | 1 |
| 2. | वेदों की रचनास्थली - कुलूत | जयकिशन सिंह ठाकुर | 4 |
| 3. | श्री खण्डेश्वर महादेव | लोकनाथ मिश्र | 9 |
| 4. | दीपावली—कुछ पर्वतीय संदर्भ | सुदर्शन डोगरा | 12 |
| 5. | हिमाचल प्रदेश की सामाजिक परंपराएं-एक परिचय | कृष्ण चन्द काएथ | 17 |
| 6. | कांगड़ा के लोहड़ी गीत—लुकड़ियां | सुरेंद्र शर्मा | 20 |
| 7. | हिमाचली संस्कृति में मोर | राम लाल पाठक | 23 |
| 8 | विशु-पुड़ग मेला | नरेंद्र 'अरुण' | 27 |
| 9. | जाहर-पीर गुग्गा | पवन कुमार शर्मा | 32 |
| 10. | हरशिंग मंदिर चनावग | एस.आर. हरनोट | 36 |
| 11. | तीज, पत्थर चौथ व सैर | ऋखीराम भारद्वाज 'ऋषि' | 40 |
| 12. | गुज्जर जनजाति में प्रचलित विवाह प्रथाएं | देसराज डोगरा | 42 |
| 13. | उख्याड़ गीथड़ - फुलैच का गीत | जसवीर सिंह | 45 |
| 14. | गुलेरी जी के पत्रों में बाबू श्याम सुंदर दास | डॉ. मनोहर लाल | 50 |
| 15. | रंगमंच तलाशते—पहाड़ी नाटक | हेमकांत कात्यायन | 52 |
| 16. | कांगड़ी लोकगाथाओं में पांडव | हरिकृष्ण मुरारी | 56 |
| 17. | हिमाचल में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की उद्भावनाएं | सीताराम ठाकुर | 61 |
| 18. | महाराजा संसारचंद और होली | डॉ. रत्न चन्द शर्मा शास्त्री | 64 |
| 19. | हिमाचल की सांस्कृतिक मान्यताओं में भूतप्रेत | रत्नलाल चौधरी | 67 |
| 20. | विवाह-गीत—सांस्कृलिक विरासत का प्रवाह | राजकुमार 'राकेश' | 71 |
| 21. | स्व. लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह—एक रपट | अशोक हंस | 88 |
| 22. | फूल और आंसु—आस्थावादी स्वर की अनुगूंज | कीर्तिकेसर | 90 |
| 23. | अकादमी की गतिविधियां | | 91 |

# संपादकीय

सोमसी संस्कृति के संरक्षण का ब्रह्ममुर्हूत है। किन्नर बोली में सोमसी का अर्थ ब्रह्ममुर्हूत ही होता है। हिमाचल प्रदेश सांस्कृतिक दृष्टि से रहस्यमय भूमि है। शिव और शक्ति की पूजा-अर्चना यहां का नित्यकर्म है। प्राचीन ऋषि-मुनियों की आत्माएं यहां के ग्राम-देवता हैं। प्रकृति ने इस भूखण्ड को सजाने, संवारने के लिए पर्याप्त परिश्रम किया है। इस प्रदेश के निवासी पर्वत पुत्र कहीं तो समतल मैदान की सी जीवन शैली अपनाए हुए हैं और कहीं इस शैली से चौंका देने वाली भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। पश्चिमी हिमाचल के इस भू-खण्ड का मानव सौभाग्य से धर्मपरायण, संवेदनशील तथा उदारवृत्ति का है। यही कारण है कि प्रदेश के किसी भी भाग में जाने पर अपनेपन का आभास मिलता है। यहां के तनावरहित सामाजिक जीवन पर ईश्वरीय कृपा है।

सोमसी का प्रत्येक अंक इस प्रदेश की संस्कृति के विभिन्न पक्षों को मुखरित करने का उत्तरदायित्व निभा रहा है। इस अंक में अनेक विषयों पर रोचक तथा शोधपूर्ण सामग्री सम्मिलित की गई है। इसमें महिषासुरमर्दिनी हाटकेश्वरी श्री खण्डेश्वर महादेव, गूगा जाहरपीर तथा हरशिंग मंदिर चनावग आदि लेख धार्मिक विषयों से संबंधित हैं। सामाजिक प्रथा पर दीपावली, सामाजिक परंपरा पर लोहड़ी गीत हिमाचली संस्कृति में मोर, विशु उत्सव, तीज़ पत्थर चौथ तथा सैर से संबंधी लेख उख्याड़ गीथड़ तथा हिमाचली विवाह गीतों में सांस्कृतिक विरासत का प्रवाह आदि विषयों पर सामग्री उपलब्ध है।गुलेरी जी के पत्रों में बाबू श्यामसुंदर दास, कांगड़ी लोक-कथाओं में पाण्डव, हिमाचल प्रदेश में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, महाराजा संसारचंद और होली, रंगमंच तलाशते पहाड़ी नाटक, वेदों की रचना स्थली-कुलूत आदि रचनाएं इतिहास तथा भाषा संबंधी विषयों से संबद्ध है।

पत्रिका के कलेवर तथा साज-सज्जा में गत वर्षों में परिवर्तन किया गया जिसकी सभी पाठकों ने सराहना की है। पत्रिका का यह अंक फोटो टाईप सैटिंग के माध्यम से मुद्रित होकर आपके सामने प्रस्तुत है। आशा है पाठक इसे पसंद करेंगे।

पत्रिका के अंक मुद्रण संबंधी अड़चनों के कारण यथासमय पाठकों तक नहीं पहुंच पाए परंतु आशा है कि पत्रिका की साज-सज्जा व उपादेय सामग्री की उपस्थिति में यह कमी नहीं अखरेगी। भविष्य में पत्रिका को समयबद्ध रूप से मुद्रित करने के लिए हम पुनः संकल्प लेते हैं।

**डॉ. बंशीराम शर्मा**

# हाटकेश्वरी

सी. आर. बी. ललित
निदेशक, भाषा एवम् संस्कृति विभाग, हि. प्र.

'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यद सनातनम्', अर्थात् सारा जगह मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं। है भी वास्तव में ऐसा ही। यह ब्रह्माण्ड, यह सृष्टि, यह मानव, दानव एवं देवों की रचना की माया, सभी कुछ नश्वर है, सभी कुछ परिवर्तनशील। समूचा जगत् शक्ति की स्फुरण का प्रतिफल है, तथापि उसी महामाया की माया-स्वरूप कोई विष्णु उत्पन्न होता तो कोई मधुकैटभ, कोई शंकर तो कोई महिषासुर।

महिषासुरमर्दिनी का इतिहास जानने के लिए हमें पहले महिषासुर के विषय में जान लेना होगा और उससे भी पूर्व उस समय के समस्त भौगोलिक परिवेश को। जैसा कि हम जानते हैं, आर्य मूलतः चरवाहे व कृषक थे जो बाह्य हिमालय के शीत देशों के मूल निवासी थे और अपनी भेड़-बकरियों के रेवड़ चराते-चराते जब काश्मीर से अरुणाचल तक की हरीतिमा एवं जलधाराओं की प्रचुरता वाले प्रदेश में पहुंचे तो यहाँ की चरागाहों में उन्हें अपने लिए अनुकूल जलवायु तथा मवेशियों के लिए माकूल घास-पानी उपलब्ध हुआ जिससे उन्हें यह प्रदेश स्वर्ग प्रतीत हुआ। इस पर अधिकार पाने के लिए तो विजातीय द्रविड़ों एवं नागों से संघर्ष चलता रहा और तदुपरान्त अदिति पुत्रों (सुरों) तथा दितिपुत्रों (असुरों) में। ये सुर भी आर्य और असुर भी आर्य, परंतु दिति पुत्र चूंकि आगे-आगे आए अतः उन्होंने स्थानीय द्रविड़ देव भगवान शंकर को मान्यता दी और अदिति पुत्र देव जो पीछे-पीछे आये वे इन्द्र, विष्णु आदि के उपासक हुए। यहीं आर्यों की दो संस्कृतियों में टकराव हुआ। जो पहले आये थे उनके गुरु शुक्र हुए और द्रविड़ों की तंत्र संस्कृति तथा बलि प्रथा को उन्होंने आत्मसात कर लिया। बाद में आने वालों का सीधा टकराव द्रविड़ों से नहीं हुआ अपितु अपने ही अग्रजों को उखाड़ने के उपक्रम में काफी व्यस्त रहे। इनके गुरु वृहस्पति हुए और इनकी राज्य व्यवस्था अधिक लोकतांत्रिक, अधिक संगठित एवं साम्राज्यवादी थी जबकि दानव व्यक्तिवादी एवं निरंकुश शासन में विश्वास रखने वाले हुए। प्राचीन साहित्य में सुर तथा असुर दोनों का ही अर्थ देवता रहा है।

त्रिदेवों में विष्णु सदैव देवताओं के हितैषी रहे। शिव द्रविड़ देव होकर भी देवताओं के चातुर्य, एवं वाक्-पटुता के कारण अन्त में उनका ही पक्ष लेते रहे भले ही वे प्रारम्भ में असुरों की पूजा अर्चना के प्रभाव में आकर उनको वर दे दिया करते थे। ब्रह्मा को हम आर्य देव के तौर पर ही जानते हैं परन्तु वे यदा-कदा असुरों पर भी अनुग्रह दृष्टि करते रहे। यह शोध का विषय है कि क्या ब्रह्मा बाद में आए? आर्य दल के साथ ही वजूद में आए अथवा यहां के मूल निवासी नागों के आदि देव रहे।

सरस्वती नदी का उद्गम स्थल आर्यों का सर्वाधिक प्रिय स्वर्ग रहा। इसी के तट पर बलग में महाराजा बलि ने अपना स्वर्ग बसाया, तो इसी के पार्श्व में सुरस्थान (सराहन) में बज्रेश्वर इन्द्र ने। महिषासुर के पिता रंभ ने अपनी तपस्या से अग्निदेव को प्रसन्न कर ऐसे पुत्र का वर प्राप्त किया जिसे सुर, असुर, तथा मानव कोई भी पराजित न कर सके और उसने अग्नि देव की कृपा से पुनर्जीवन भी प्राप्त किया था। जिस स्थान पर :—

**महिषो नाम दैत्येन्द्रो रंभपुत्रो महाबलः।**
**वरदर्पमदोन्यतो मायाशतविचक्षणः ।।** —देवी भागवत्

उसने हजारों वर्ष तक तपस्या एवं यज्ञ किये उसे उसी की स्मृति में रंभ-आलय का नाम दिया जाना स्वभाविक ही था जिसे स्वर्ग पर विजय पाने के पश्चात् उसके प्रतापी पुत्र ने रंभीकोट अथवा रंभीगढ़ (वर्तमान रांवीगढ़) में परिवर्तित



tharahkardu.in

कर दिया तथा शिव जी को प्रसन्न कर जब उसने अतुलनीय बल प्राप्त किया तो यम साम्राज्याधिपति (जौंसाराधिपति) यम को, सुरस्थानाधिपति (सराहन) बज्रेश्वर इन्द्र को तथा अन्य समस्त देवताओं को पराजित कर महिषासुर स्थान (महिषरान) वर्तमान मशंराह में अपना स्वर्ग बसाया और समस्त देवताओं को स्वर्ग से निष्कासित कर दिया। बरुप की अल्कापुरी (वर्तमान जोशीमठ) को भी उसने अपने अधीन कर लिया। धीरे-धीरे देवगण, जिन्हें पार्वती नदी (पब्बर) तथा शतद्रुम क्षेत्र में हिममण्डित क्षेत्रों में भागना पड़ा था अपने आप को एक अन्य सुरस्थान (सराहन) में संगठित किया और स्वर्णपुर (वर्तमान सुनपुर) दुर्ग के पास जहाँ बाद में विराट राजा ने अपनी राजधानी बनाई, महिषासुर से युद्ध के लिए व्यूह रचना की। महामाया का आवाहन किया तो समस्त देवों के तेजपुजो से शक्ति माता का प्रादुर्भाव हुआ। विष्णु ने चक्र दिया, ब्रहमा ने पाश और शिव ने त्रिशूल तथा अन्य समस्त देवों ने भी अपने-अपने दिव्यास्त्र भेंट किए। देवी शक्ति ने :—

**अतुलं तवतेजसः सर्वदेवशरीरजम्।।**
**एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयांत्वेषा।।** —दुर्गा सप्तशती

देवी की कमान में सिंह समान आये वीरों ने जब युद्ध की हुंकार भरी तो महिषासुर ने सर्वप्रथम पश्चिम की ओर से आक्रमण करने के लिये उधर के दिक्पालों दुर्मुख एवं वाष्कल को भेजा। दुमुख-दर्गुखोटी (वर्तमान दरकोटी) का तथा वाष्कल, बावष्कलटी घाटी (वर्तमान जुब्बल क्षेत्र) क्षेत्र का संरक्षक रहा जो दोनों ही समरांगण में खेत रहे। फिर महिषासुर ने ताम्राथ (बाम्बी क्षेत्री के क्षेत्रपाल) तथा चिक्षुराख (चिउंअर क्षेत्र के रक्षक) को भेजा वे भी युद्ध में काम आये और उनके साथ ही असिलोमा (आजुड़ी) जोत के क्षेत्रफल का भी महामाया ने काम तमाम कर दिया। गन्धर्व, पिशाच और किन्नरों ने भी इस युद्ध में भाग लिया। तत्पश्चात् दक्षिण दिशा से बिडालाक्ष विड़ाल अथवा वढ़ाल के क्षेत्रपाल को देवी से युद्ध करने भेजा गया।

**ऋषयः सिद्ध गन्धर्वाः पिशाचोरंग चारणा।**
**किन्नरा प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः।।** —देवी भागवत

जो वर्तमान बडाल (भडांल) स्थान पर समर में काम आया विनेषपुर (तिउनी) के सम्राट बिनेग को भी देवी ने पर-लोकधाम पहुंचने में अधिक समय नहीं लगाया और अन्त में महिषासुर को (जो रंभीगढ़ वर्तमान रांवीगढ़) के शासक रंभ का अग्नि देव के वर से उत्पन्न हुआ पुत्र था जो रंभ के स्थानीय ढातु धारी देवकन्या (महिर्षी) के साथ संसर्ग से उत्पन्न हुआ), भी चक्र के आघात से घायल कर त्रिशूल के वारों से विक्षत कर शिवधाम की राह दिखाई।

**ततो देवी सहस्त्रेयं सुनायं चक्रगुत्तमम्।**
**करे कृत्वा जगादोच्चै संस्थितं महिषासुरम्।।** —देवी भागवत

महिषासुर की गर्जना सुनकर देवी क्रोधित होकर उसके अनेक वीरों को नष्ट करती रही। अन्त में देवी कूद कर महिषासुर पर चढ़ गई और पैर से दबाकर उसके कण्ठ में एक त्रिशूल मारा और उस दुष्ट असुर का काम तमाम कर दिया। देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए, और गन्धर्व तथा अप्सराएँ नाचने लगी। उपरोक्त दरकोटी, बाष्कटी

**एवमुत्तवा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम्।।**
**पादेनाक्रम्य कण्ठे व शूलैनेनमताडयत्।।** —दुर्गा सप्तशती

वड़ाल, चाम्बी (ताम्र का पहाड़ी पर्यायवाची), आझुड़ी, चिऊमा, तिउनी, आदि स्थान आज भी देवी एवं महिषासुर के संग्राम के सार्थक साक्षी हैं और देवी की सहायतार्थ आये भगवान एस्कन्द का पड़ाव तीन मील दूर संकधावर्त (संघौर) भी वर्तमान सुनपुर (स्वर्णपुर) तथा प्रसिद्ध हाटकोटी मन्दिर के पार्श्व में ही हैं और यह लोक विश्वास कि देवी हाटकोटी लवधार से अवतरित हुई थी इसी ओर इंगित करता है कि महिषासुर ने स्वर्ग पर अधिकार कर देवताओं को शीत क्षेत्र की ओर भागने पर मजबूर कर दिया था जहां बर्फ की अधिकता के कारण वे दुःखी हो त्रिदेवों की शरण में गए और स्वर्ग पर पुनः आधिपत्य जमाने के लिये महिषासुर से युद्ध किया। स्वर्ग की नदी सरस्वती को हमारे सभी शास्त्रों में मान्यता मिली है —

**सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः**
**बमुव पूजिता नित्यं सर्वलोकः सरस्वती।।** —देवी भागवत

स्कन्द पुराण में इसे गिराव नाम से भी पुकारा गया है जो सतयुग में अरब सागर में जा मिलती थी, त्रेता में नाहन (आम्रनद्री) होकर कुरुक्षेत्र को दो भागों में बांटती हुई, प्रयाग में गंगा जी में जा मिलती थी और भूचाल जनित धारठीधार के बीच में आने से पणझाल (जलप्रपात) के स्थान पर मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर स्वर्ग के भीतर ही शिवलिक धारों के पीछे-पीछे होती हुई स्वर्ग में लुप्त ही हो गई और रामपुर घाट में यमुना की जलधारा से एकाकार होकर प्रयाग में गंगा से मिलती है।

माँ भगवती की महिषासुर पर विजय के उपलक्ष्य में देवताओं ने महिषासुर के हनन स्थल पर हाटकेश्वरी (स्वर्ग आभायुक्त देवी) का अभिनन्दन पूजन अर्चन कर स्वर्गपुर टीले के साथ ही पार्वती (पब्बर) नदी के तट पर विजय स्मारक की स्थापना की जहाँ कालान्तर में सिंह वाहिनी माँ जगदम्बा की अष्टधातु की मूर्ति स्थापित की गई जिसमें माँ का श्रीविग्रह अत्यन्त देदीप्यमान है और जागृत भी। यहाँ महिषासुर मर्दन की मुद्रा में माँ शस्त्रास्त्रों के श्रृंगार से सज्जित साक्षात सौंदर्य की प्रतिमूर्ति बनी हुई है और प्रति वर्ष लाखों श्रद्धालु भक्तजन उनके दर्शन से अपने आपको कृतार्थ हुआ पाते हैं। मां की अष्टधातु प्रतिमा अपने आकार की देश की प्राचीनतम अष्ट धातु प्रतिमाओं में से एक है। स्वर्णपुर पहाड़ी में अवस्थित एक गुफा की लिपि भाषा-विशेषज्ञों के लिए अब तक भी रहस्य बनी हुई है।

स्वर्णपुर टीले के पार्श्व में विराटनगर में भगवान शिव तथा सूर्यनारायण के मंदिर जो इस क्षेत्र के इतिहास की अनुपम धरोहर हैं और स्थापत्य कला के विशिष्ट नमूने, आज भी जीर्णावस्था में किसी विराट सम्राट के हाथों जीर्णोद्धार की प्रतीक्षा में हैं। अनिवर्चनीय सौंदर्ययुक्त मां भगवती की अष्ट धातु प्रतिमा जो सिंहासन सहित, १५ फुट ऊंची है, धरती के नीचे कितनी दबी हुई है इस विषय पर कहते हैं गोरखा आक्रान्ताओं ने १९वीं सदी के दूसरे दशक में कुछ अनुसन्धान किया था परन्तु नियत में खोट के कारण इसकी थाह न पा सकें। हाँ, उन्हें पराजय अवश्य मिली और एक बार नेपाल से कुल्लू-कांगड़ा तक फैला गोरखा साम्राज्य टूट गया। महाराजा पटियाला, जो लगभग प्रतिवर्ष मां के दर्शन करने आते रहे, ने भी एक बार महिषबलि कुण्ड में बकरी की बलि देकर पूजा करने की राजहठ की तो चिमटे की नोक से खुलने वाला कुण्ड राजा के गुमाश्तों द्वारा झब्बल से भी न खुल सका और राजा मन्दिर से वापस जाते ही बीमार पड़ कर असमय काल का ग्रास बना।

अष्टधातु प्रतिमा के दोनों ओर के तोरणों पर संस्कृत भाषा की सिद्धामिन लिपि में लिखे अभिलेखों के अनुवाद विद्वान-विशेषज्ञ इस प्रकार प्रस्तुत करते है :—

'भटटा श्री स्थानम् कारयीतम् कायस्था।
दाहिला पुत्रः पदमानाभः वाधितीया घाटीतम्' ।।

इस अभिलेख के अनुवाद अनुसार यह प्रतिमा किसी पद्मनाभ नामक भटट् ने बनवाई थी और सुरस्थान का भी नाम ज्ञात होता है। निश्छल भक्तिभाव से स्तुति करने वालों को माँ तत्काल दर्शन लाभ भी प्रदान करती है और इच्छापूर्ति भी। हिमाचल के मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने इस मंदिर के ऐतिहासिक महत्व को समझते हुए मंदिर के जीर्णोद्धार हेतु विशेष ध्यान दिया है। जिससे जितनी भव्य माँ की मूर्ति है उसी के अनुरूप प्राचीन मूल मंदिर की वास्तुकला को आघात पहुंचाए बिना परिसर की शोभा भी परवान चढ़ने लगी है और हरे-भरे धान के खेतों के मध्य पवित्र मंदिर क्षेत्र मरकत मणि की भांति ज्योत्सना का प्रसार करने लगा है तथा मंदिर परिसर श्री वीरभद्र जी के सद्प्रयासों से अत्यन्त दर्शनीय स्थल बन गया है और यदि मंदिर तथा पब्बर की ओर वाले सड़क मोड़ तक के त्रिकोण को मंदिर परिसर के साथ सम्बद्ध कर योजनाबद्ध वास्तु-विकास सम्भव हो सका तो सुरों के असुरों पर विजय की इस प्रतीक स्थली को इसका उचित गौरव प्राप्त हो जाएगा।

वर्तमान में महामाया देवी शक्ति महिषासुरमर्दिनी का भक्तों के मन में अत्यन्त उच्च स्थान है। मां भगवती को हाटकेश्वरी माता के नाम से भी जाना जाता है।

# वेदों की रचना-स्थली—कुलूत

जयकिशन सिंह ठाकुर
कृष्णा बिल्डिंग ढली, शिमला-१२ हि.प्र.

हिमाचल की अति सुन्दर वादियों में कुल्लू का अपना अलग ही अस्तित्व है। प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर यह वादी अपने ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक महत्वों को लिए अपने सीने में असंख्य कहानियों को छुपाये गगनचुम्बी हिमालय की गोद में नन्हें, मासूम व भोले-भाले बालक की भांति शांत व निश्छल पड़ी हुई है। यहां की हर नदी, हर चट्टान, हर पर्वत की चोटी, हर वृक्ष और हर गांव में काले पत्थरों का बनाया गया चबूतरा, किसी-न-किसी ऋषि-मुनि और देवी-देवता की कहानी कहता है। यह वह स्थान है जहां मानव-सृष्टि की रचना सबसे पहले मनु महाराज ने की, जहां महर्षि वेद व्यास ने सर्वप्रथम वेदों की ऋचाओं को संकलित किया, जहां आठ सौ पुत्रों की मृत्यु से अशांत महर्षि-वशिष्ठ के बन्धन तोड़कर विपाशा ने उन्हें नई जीवन दिशा प्रदान की, जहां एक दानवी-हिडिम्बा को देवी बनाया गया, जहां ऋषि जमदग्नि ने १८ देवताओं को स्थापित किया और स्थापित किया-मलाणा नामक स्थान पर संसार का सबसे प्रथम लोकतंत्र, जो युग बीत जाने पर तथा संसार के समाज के तौर-तरीके बदल जाने पर भी ज्यों का त्यों चला आ रहा है।

इतिहासकार अपने मत देते हैं कि हिमालय की गोद में बसा कुलूत प्रदेश, जिसे अब केवल कुल्लू के नाम से जाना जाता है, वह स्थान है जहां विभिन्न ऋषियों द्वारा रचित वेदों की ऋचाएं महर्षि वेदव्यास ने मनाली से कुछ दूर ऊपर व्यास कुण्ड के स्थान पर लिखित रूप में संकलित की। इससे पूर्व ऋचाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक दूसरे को सुनाकर गुरुशिष्य परंपरा के द्वारा अक्षुण्ण रखा गया। कितना महान् कार्य किया महर्षि व्यास ने? आज संसार में ऋग्वेद को सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इसकी रचना उस समय कर दी गई थी जब संसार के अधिकांश भागों में लोग पशुओं की भांति जीवन व्यतीत किया करते थे और लिखने की कोई शैली नहीं होती थी।

मनाली जो आज संसार भर के पर्यटक स्थलों में महत्वपूर्ण मानी जाती है, में प्राचीन युग में बहुत सी घटनायें घटीं। कहते हैं जब पाण्डव लाक्षागृह में जलने से बचे तो जंगलों में भटकते रहे। भटकते-भटकते वे हिडिंबासुर नामक असुर के देश में जा पहुंचे। हिडिम्बासुर तब इस देश के बहुत बड़े भाग पर राज्य करता था। लाहुल स्पिति से गढ़वाल तक हिडिम्ब नहीं चाहता था कि उसकी बहिन एक आर्य पुरुष से शादी करें और तब उसने भीमसेन को मारने की ठानी। परंतु भीमसेन की शक्ति के आगे वह टिक न सका और मारा गया। भीमसेन ने हिडिम्बा से विवाह कर लिया। कहते हैं मनाली के जंगलों में वे दोनों एक वर्ष तक रहे और हिडिम्बा ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम घटोत्कच रखा गया। यह घटोत्कच महाभारत के युद्ध में बहादुरी से लड़ा। हिडिम्बा ने असुर-वृत्ति त्याग कर घोर तपस्या की और बाद में दानवी से देवी बनी। पाण्डवों की दूसरी यात्रा मनाली की तब हुई जब वे जुए में सब कुछ हार गये थे। तब इसी मनाली नामक स्थान पर धर्म और अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक बहुत बड़ी मंत्रणा का सूत्रपात किया गया और निश्चय हुआ कि अर्जुन शंकर की उपासना करके पाशुपत अस्त्र प्राप्त करे और कौरवों से युद्ध करके न केवल द्रौपदी के अपमान का बदला ले अपितु अपने अधिकारों को भी फिर से प्राप्त करें। इस मंत्रणा की रूपरेखा महर्षि वेद व्यास ने ही बनाई थी और अर्जुन इन्द्रकील पर्वत, जो मनाली से ऊपर उत्तर की ओर स्थित है, पर पहुंचा जहां उसे भगवान इन्द्र के दर्शन हुए। देवताओं के राजा इन्द्र ने अर्जुन को शंकर की तपस्या करने की अनुमति दी। बाद में अर्जुन को पाशुपत अस्त्र इसी स्थानपर भगवान शंकर ने प्रदान किया।

विजली महादेव कुल्लू में व्यास और पार्वती के संगम से ठीक ऊपर एक ऊंचा शुष्क पर्वत है जिसकी चोटी पर विजलेश्वर या बिजली महादेव का मंदिर स्थापित है। ऋग्वेद की एक ऋचा (३/४६/७) है जिसका अर्थ है, हे रुद्र! आकाश के ऊपर से छोड़ी हुई तुम्हारी जो बिजली, पृथ्वी पर प्रकट हो रही है, वह हमारा पीछा करना छोड़ दे। और फिर ऋचा का अर्थ है, 'हे स्वयं पीने वाले (स्वापिवात)। तुम्हारी हज़ारों औषधियां हैं, हमारी सन्तान को हानि न पहुंचाओ।' इससे प्रकट होता है कि रुद्र ने बिजली को पृथ्वी पर छोड़ा जिससे ऋषि वशिष्ठ को, जो उक्त ऋचा के रचयिता हैं, अपने लोगों समेत भयभीत किया। उन्होंने जोर से प्रार्थना की यह बिजली उनको छोड़ दे। रुद्र ने बशिष्ठ की प्रार्थना पर आकाश से छोड़ी हुई बिजली को अपने में वापिस ले लिया और जिस जगह यह घटना हुई.... जहां रुद्र रूप भगवान शिव ने अपनी छोड़ी हुई बिजली को अपने में समाहित किया वह यही स्थान है। और यह अनुश्रुति नहीं बल्कि वास्तविकता है कि लगभग बारह वर्ष के बाद इस मंदिर पर आकाश से बिजली गिरती है। महादेव का पत्थर का पिण्ड चूर-चूर हो जाता है। इसके बाद पुजारी लोग गांव के हर घर शुद्ध व ताजा बनाया गया मक्खन एकत्र करके इस चूर-चूर पिण्ड को उस मक्खन से जोड़ देते है और लिंग रूप में खड़ा कर देते हैं। पत्थर और मक्खन आपस में ऐसे जुड़ जाते हैं कि मक्खन अपने पिघलने की विशेषता छोड़ देता है और पत्थर बन बैठता है। रुद्र का रूप.... भगवान का शिव का रूप... महादेव शंकर का रूप धारण कर लेता है। यह पिण्ड महादेव का हृदय बन जाता है... मक्खन की तरह कोमल और पत्थर की तरह कठोर।

**मनाली** – हिमालय के दामन में बसे इस प्रदेश की सुंदरवादी में मनाली नामक स्थान पर ही एक और विचित्र घटना घटी। इस घटना का वर्णन हमें 'शतपथ ब्राह्मण' से मिलता है, जिसे बाद में महाभारत और मत्स्य पुराण में भी दोहराया गया है। इस कहानी के आधार पर वर्तमान मानव वंश एक बहुत बड़े तूफान के बाद अस्तित्व में आया। हिन्दू शास्त्रों में इसे 'मनु की बाढ़' कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण की कहानी को यों बताया गया है कि एक दिन जब मनु को हाथ धोने के लिए पानी दिया गया तो अकस्मात् हाथों में एक छोटी मछली आ गई। मनु से कहने लगी कि भगवान के लिए मेरी रक्षा करो, मुझे फैंको मत अन्यथा बड़ी मछलियां मुझे खा जाएंगी। यदि मुझे बचाओगे तो आने वाले एक बड़े भय से बचाने का वचन देती हूँ। मनु ने मछली की बात मान ली और उसे पालना शुरु कर दिया। जब मछली बड़ी हुई तो बरतन उसके लिए छोटा पड़ने लगा फिर उसे एक तालाब में डाला गया। एक समय आया जब तालाब भी उसे छोटा पड़ गया। तब उस मछली ने मनु से कहा कि, 'हे महाराज! अब बेशक मुझे समुद्र में डाल दीजिए अब मुझे कोई खतरा नहीं है। परन्तु याद रखिए इस पृथ्वी पर बहुत शीघ्र एक बहुत बड़ा तूफान आने वाला है। इसमें कोई भी चीज बच नहीं पायेगी। इसलिए आप एक बड़ी सी नाव बनवा लो। जब पानी पूरी तेजी से चढ़ना आरम्भ हो जाए तो उस नाव में चढ़ जाना। सप्तऋषियों को भी अपने साथ रख लेना तथा सृष्टि की हर चीज को बीज के रूप में सुंदर ढंग से इस नाव में सुरक्षित रखना, तब नाव को मेरे इस बड़े से सींग में बांध देना, मैं आपकी रक्षा करुंगी। मनु ने मछली की बात मान ली। नियत समय पर पानी चढ़ना आरम्भ हो गया। निश्चित कार्यक्रम के अनुसार मनु के साथ सप्तऋषि भी नाव में सवार हो गये। नाव का मजबूत रस्सा मछली के सींग में बांध दिया गया। हिमालय के एक उच्चतम स्थान पर नाव खड़ी हो गई। धीरे-धीरे पानी उतरना आरंभ हुआ। मनु तो वही ठहर गया परंतु उसके साथी सप्तऋषि हिमालय पर तपस्या करने चले गये। मनु ने यहां बैठ कर ही तप किया। तप के जोर से श्रद्धा या कामायनी नामक स्त्री उत्पन्न हुई और तब मनु की नई सृष्टि का आरम्भ हुआ। मनाली को मनु का घर माना जाता है।

**मलाणा**—कुल्लू-मनाली राजमार्ग पर 'नगर' नामक एक अति रमणीक स्थान है। यह वह जगह है जहां ऋषि जमदग्नि ने अठारह देवताओं को सबसे पहले लाया और उसके आसपास के स्थानों में उन्हें सदा-सदा के लिए स्थापित कर दिया। इन्हें कुल्लू में 'ठारह करडू' के नाम से जाना जाता है। देवताओं की स्थापना करने के बाद ऋषि अपनी पत्नी रेणुका को संग लिए चल दिए एक ऐसे शांत व सुरक्षित स्थान को ढूंढ़ने जहां वे तप-जप करके जीवन व्यतीत कर सकें। घूमते-घूमते वे एक बेहद सुंदर स्थान, जिसे मलाणा के नाम से जाना जाता है, पर पहुंचे। उस रमणीक स्थान ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे वहीं बस गये। धीरे-धीरे मलाणा में बस्ती की स्थापना हो गई। नियमित व अनुशासनात्मक जीवन जीने के लिए गणतंत्र पद्धति को अपनाया गया। ऐसा गणतंत्र का उदाहरण भारत तो क्या संसार में कहीं नहीं होगा

जो इसी कुलूत प्रदेश के मलाणा गांव में आज भी, लाखों वर्ष बीत जाने पर भी, ज्यों का त्यों चला आ रहा है। यह स्थान हिमालय का ऐसी घाटियों में आबाद है जहां पहुंचना आसान नहीं है। इस गांव की भाषा का संसार की अन्य भाषाओं से मेल नहीं होता। यद्यपि कोई शब्द इसमें तिब्बती, बुशहरी और मुंडा भाषा के जान पड़ते हैं। पर इस भाषा का रंग रूप अपना ही है। इसे कोई नहीं समझ सकता। कुल्लू भर में इसे देवताओं की भाषा कहते हैं। यहाँ तक कि इस गांव में सदियों स रह रहे हरिजन लोग भी इस भाषा को समझ तो सकते हैं, बोल नहीं सकते। मलाणा के जनपद का जहां तक संबंध है, वह एक नमूने का गणतंत्रात्मक शासन है, एक बड़ा गांव है जिसमें पांच सौ घर है। पूरा गांव दो भागों में विभक्त है जिनमें चार चुघ अर्थात् बार्ड (wards) हैं। इनसे नियमतः प्रतिनिधि चुने जाते हैं, परंतु निर्वाचन बहुमत से नहीं, एकमत से होता है। दो बड़े हल्कों को 'सौरा बेढ़' और धारा बेढ़' कहा जाता है और चार चुघ धम्याणी, नगवाणी, दुराणी और पलचाणी कहलाते हैं। इस जनपद का सारा काम आज भी देवता जमलू (ऋषि जमदग्नि को यहां जमलू कहा जाता है) के आध्यात्मिक मार्ग दर्शन में चलता है और इसे देवता जमलू का ही राज्य माना जाता है। सारा गांव और उसकी जमीन देवता के नाम है और हर एक निवासी देवता का मुजारा है। मुजारा कानून बन जाने के बाद भी यहां के लोगों ने जमीन का स्वामित्व लेने की कोशिश नहीं की। इस जनपद मं 'अपर' और 'लोअर' दो सदन है। अपर हाऊस को 'जेष्ठांग' कहते हैं और लोअर हाऊस को 'कोर' कहा जाता है अर्थात जनरल असैम्बली या ग्राम सभा। इस कोर या ग्राम सभा में गांव के प्रत्येक घर का मुखिया सदस्य होता है, और वोट देने का अधिकार केवल उसे ही मिलता है। अपर हाऊस या जेष्ठांग के ग्यारह सदस्य चुने जो हैं, जिनमें से तीन प्रतिनिधि, बड़ा पुजारी नगवाणी चुघ से चुना जाता है और इसे चुघ के सदस्य ही चुन कर भेजते हैं। देवता के बाद इस जनपद का सबसे बड़ा अधिकारी इसे ही माना जाता है। कर्मिष्ठ धम्याणी चुघ से चुना जाता है और 'गूर' दुराणी अथवा पलचाणी किसी एक में से। 'गूर' में देवता की अध्यात्मिक इच्छा का विशेष महत्व है और इसके द्वारा ही देवता की तरफ से आदेश और 'पूछ' दी जाती है। यों समझिए कि देवता की ओर से यह सुप्रीम हाऊस का अध्यक्ष है। ये तीनों प्रतिनिधि अर्थात् बड़ा पुजारी, कर्मिष्ट और गूर जीवन में एक बार चुने जाते हैं। जेष्ठांग के शेष आठ सदस्य प्रत्येक चुघ से चुने जाते है। अपर हाऊस के प्रतिनिधित्व के लिए मुकाबला करने की आज्ञा है परन्तु साधारणतया कशमकश नहीं होने दी जाती और प्रायः एक ही मत से उनका चुनाव कर दिया जाता है। अपर हाऊस के आठ सदस्यों का चुनाव जब आवश्यकता पड़े करा लिया जाता है। प्रायः इन्हें चार पांच वर्ष तक काम करने का अवसर दिया जाता है। इनमें से किसी एक के निकाले जाने पर अथवा पद त्यागने पर सभी आठ सदस्य सेवानिवृत्त समझे जाते हैं और ऐसे अवसर पर जिस चौंतड़े (चबूतरे) पर ये बैठते हैं वहां से ये नीचे उतर आते हैं। चौंतड़े पर केवल बड़ा पुजारी, कर्मिष्ट और गूर ही बैठे रह जाते हैं क्योंकि चौंतड़ा खाली नहीं रखा जाता। आठ सदस्यों के नीचे उतर आने के तुरन्त बाद उनके स्थान पर नये सदस्य चुन लिए जाते हैं। यह कार्यवाही लोअर हाऊस के सामने होती है और लोअर हाऊस उसी समय आठ सदस्यों का चुनाव कर देता है। चुने गये नये सदस्यों को बड़ा पुजारी हाथ से पकड़ कर चौंतड़े पर बिठाता है। उसी समय सभा का एक कार्यकर्त्ता बकरे को काट कर उसके खून से लथपथ दराट को चौंतड़े पर ले जाता है और नये सदस्यों के सामने बारी-बारी से पेश करता है। नये सदस्य उस खून से अपने माथे पर टीका लगाते हैं और एक आवाज होकर देवता और जनपद के प्रति वफादार रहने की शपथ लेते हैं।

इस जनपद में चार और अधिकारी चुने जाते हैं जिन्हें 'पोगलदार' कहा जाता है। प्रत्येक चुघ से एक पोगलदार लिया जाता है। इनका काम लगभग पुलिस के कर्मचारी जैसा होता है। इन्हें देवता के खजाने से प्रतिवर्ष एक रुपया मिलता है। सभी किस्म के फैसले देवता को आधार मान कर जेष्ठांग करता है। ये पोगलदार जुर्माना वसूल करना, जेष्ठांग के आदेशों का पालन कराना, शांति बनाये रखना जैसे कार्य भी करते हैं। यदि किसी पीड़ित को किसी मामले में तुरंत निर्णय करवाना हो तो वह चौंतड़े के पास आग जला कर बैठ जाता है और रात होने तक वहीं बैठा रहता है। गांव में उपस्थित जिस जेष्ठांग को भी इसका पता लगता है वह उस आदमी के पास आकर उसे विश्वास दिलाता है कि फैसला करने के लिए प्रातः ही कोर की बैठक बुलाई जाएगी। दूसरे दिन बैठक बुलाकर जेष्ठांग उसका फैसला करा देते हैं। मजे की बात कि इस जनपद के लोग कचहरियों में जाना कतई पसंद नहीं करते। बात छोटी हो अथवा महत्वपूर्ण, वे अपनी ही अदालत से फैसला लेते है और उस फैसले पर निष्ठा से अमल भी करते हैं।

यद्यपि यह जनपद महर्षि जमदग्नि के उसूलों पर ही चलता है परंतु महर्षि का यहां पर कोई रथ नहीं, कोई बुत नहीं, कोई मोहरा नहीं। उनके अस्तित्व और महत्व का यहां केवल एक निशान मौजूद है जो उनका 'खण्डा' है जिसे स्थानीय भाषा में 'टुंडाच' कहते हैं। इसके अतिरिक्त 'चन्द्रभान' नाम का एक और खण्डा भी है। कुछ नरसिंघे, नफेरिया, सूरज पंखे, छड़ियां आदि भी हैं जिन्हें देवता का निशान माना जाता है।

**निरमण्ड**—कुल्लू की अति सुंदर वादियों में सुदूर एक स्थान है निरमण्ड। यह यह स्थान कुल्लू के औटर सिराज के अन्तर्गत आता है। महर्षि जमदग्नि के कनिष्ठ पुत्र परशुराम की कहानी इस क्षेत्र से जुड़ी हुई है। निरमण्ड भगवान परशुराम का एक भव्य प्राचीन मंदिर है जो भारतवर्ष भर में अपना विशेष महत्व रखता है। परशुराम ने क्षेत्रीय राजाओं को मिटाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी थी जो अपने धर्म से गिर गये थे। जिस ओर उनका कुल्हाड़ा चलता वहाँ लोग गाजर-मूली की भांति कटते थे। सप्त सिंधु में सैकड़ों लड़ाइयां लड़ने के बाद परशुराम हिमालय की ओर बढ़े और निरमण्ड के स्थान पर आकर तप और भक्ति में लग गये। इसी जगह उन्होंने खून खराबे का प्रायश्चित्त करने के लिए नरमेध यज्ञ भी किया था, जो आज तक 'निरमण्ड भूण्डा' के नाम से हर बारह वर्ष बाद किसी न किसी रूप में मनाया जाता है। इस स्थान पर सबसे महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय यादगार परशुराम की वह गुफा है जहां उन्होंने तप किया था। उस गुफा में आज भी उनके निजी प्रयोग की वस्तुएं रखी हुई हैं।

महाभारत काल की बहुत सी घटनायें इसी कुलूत प्रदेश में घटीं इससे भी पूर्व आर्यों के प्रथम आगमन की घटानायें, असंख्य ऋषि-मुनियों के द्वारा किए गये तपों और वेदों की रचना की कहानियां और तत्पश्चात् द्वापर युग, जिसे रामायण काल भी कहा जाता हे की कहानी भी इसी प्रदेश से जुड़ी हुई है। इससे संबंधित एक ऐसी घटना का वर्णन हम यहां कर रहे हैं जिसके बारे में बहुत कम लोगों को ज्ञात है। महाराज मनु के आठ लड़के थे। उनमें सबसे बड़े का नाम 'इक्ष्वाकु' था और इक्ष्वाकु की राजधानी थी-अयोध्या। सैंकड़ों वर्षों तक उत्तरी भारत पर इस वंश का राज्य रहा। इस वंश में अच्छे-अच्छे शक्तिशाली राजा हुए। परंतु आर्यों की राज्य सीमा विन्ध्याचल पर्वत से आगे दक्षिण भारत की ओर न बढ़ सकी। इसके मुकाबले दक्षिण भारत के बहुत से राजे, जिनमें रावण भी शामिल था, किसी-न-किसी रास्ते उत्तरी भारत के इलाकों पर छापे मारा करते थे। कहा जाता है कि एक बार रावण ने हिमालय तक आक्रमण किये थे और ऋषि आश्रमों को जलाया था। दक्षिण भारत के द्रविड़ और दूसरे कबीलों को पराजित करना उत्तर के राजाओं का एक स्वप्न सा रहा था, किन्तु इसके लिए बड़ी शक्ति की आवश्यकता थी। उत्तर के राजा दक्षिण तक आर्य संस्कृति फैलाना चाहते थे परन्तु वहां की संस्कृति एक तो भिन्न थी, दूसरे वहां के सभी राजा और अन्य लोग बड़े सतर्क तथा जागरुक थे। दक्षिण भारत को जीते बगैर न तो चक्रवर्ती राज्य स्थापित हो सकता था और न ही आर्य संस्कृति का फैलाव पूर्ण होता था। दोनों बाते ऐसी थी जिन्हें उत्तरी भारत के सारे आर्य ऋषियों ने मिल कर सोचा और विचार विमर्श के बाद इस परिणाम पर पहुंचे कि दक्षिणी भारत पर विजय तब तक नहीं पाई जा सकती जब तक उन लोगों में आपसी फूट और विरोध न डाला जाए और तब आर्यों का इतना शक्तिशाली राजा पैदा किया जाए जिसके अन्दर आत्यात्मिक शक्ति द्वारा प्रकृति की वे सभी शक्तियां भर दी जाएं जिससे दक्षिण भारत की विजय हो सके। उस समय अध्योध्या में इक्ष्वाकु वंश के राजा दशरथ का राज्य था। उत्तरी भारत में यही एक शक्तिशाली और सुदृढ़ शासन था जिसके राजा थे दशरथ। इसलिए ऋषियों ने निर्णय लिया कि किसी भी तरह दशरथ के यहाँ सन्तान होनी चाहिए और उसमें ऐसी शक्ति भर दी जानी चाहिए जो आर्य संस्कृति के विस्तार के लिए चमत्कार बन सके। लेकिन भगवान की इच्छा के विरुद्ध दशरथ के यहां संतान नहीं हो सकती थी और ऐसा कोई ऋषि नजर नहीं आता था जो ईश्वर की शक्ति को जगा कर राजा के यहां संतान पैदा करा सके। बहुत सोच विचार के बाद निर्णय लिया गया कि ऐसा बाल-ब्रह्मचारी तपस्वी और महान् योगी जिसने जीवन में स्त्री का मुख तक न देखा हो, राजा दशरथ के यहां पुत्रेष्टि यज्ञ करवाये और हवन की अग्नि पर पका चरू यदि रानियों को खिलाया जाए तो प्रकृति की एक बहुत बडी शक्ति को नियंत्रण दिया जा सकता है। ऐसे बाल योगी की खोज के लिए चारों ओर आदमी दौड़ाए गये। विशेषत: हिमालय की घाटियों और वादियों की छानबीन आरम्भ हुई। बहुत दिनों बाद कुलूत देश में ऐसे एक महान् ऋषि का पता चला जो ऋषि श्रृंगी के नाम से सुप्रसिद्ध थे। ये बाल बालब्रह्मचारी, वेद

क्ता, उज्ज्वल तेज वाले महान तपस्वी थे जो यह भी नहीं जानते थे कि संसार में स्त्री नाम की वस्तु भी होती है। ऋषि श्रृंगी ने न केवल राजा दशरथ का पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न कराया बल्कि अपना सारा योगबल भी उन्होंने उस चरु में डाल दिया जो रानियों को खिलाया गया। रानियों से जो पुत्र पैदा हुए वे बहुत तेजस्वी, शक्तिशाली थे। उत्तरी भारत के सारे ऋषियों की आंखें दशरथ के बड़े पुत्र राम पर लगी हुई थी। जब चारों पुत्र बड़े हुए तो विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के बहाने वहां से ले गये। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को अस्त्र-शस्त्र विद्या में पूर्ण बना दिया और दक्षिणी भारत के उन राक्षसों से लड़ने का कला-कौशल भी सीखा दिया जो उत्तर में आकर ऋषियों के यज्ञ में खलल डालते थे। और इस तरह आने वाली उस महान् लड़ाई के लिए उन्हें तैयार किया जिसके लिये यह सारी योजना बनाई गई थी। राम की दूसरी परीक्षा सीता स्वयंवर में कराई गई। जिस शिव धनुष को तोड़ने में रावण भी सफल न हुआ उसे राम ने तोड़ कर दिखाया। राम की शक्ति की तीसरी परीक्षा लेने भगवान परशुराम स्वयं आये। उन्होंने शिव धनुष से भी मजबूत एक अन्य धनुष पर चिल्ला चढ़ाने को कहा। राम इस परीक्षा में भी सफल हुए। इसके बाद तमाम आर्य ऋषियों को यह विश्वास हो गया कि प्रकृति की एक बहुत बड़ी शक्ति को साक्षात करने की उन्होंने जो योजना बनाई थी और जिसे पूर्ण करने के लिए हिमालय से श्रृंगी ऋषि को बुलाया था, वह योजना अब पूरी हो चुकी है। इसके बाद ऋषियों ने विन्ध्याचल पर्वत पर अपने आश्रम बनाये और धीरे-धीरे स्थानीय लोगों को अपने प्रभाव में लिया। फिर साधु वेश में राम को दक्षिण में ले जाया गया, दक्षिण के लोगों में फूट डाली गई और अपने साथ मिला कर एक बड़ी शक्ति कायम करके लंका पर आक्रमण कर दिया और इस तरह दक्षिण भारत पर भी आर्य संस्कृति की विजय हुई।

ऊपर लिखी गई तमाम घटनाओं से भली-भांति ज्ञात हो जाता है कि हिमालय की गोद में पनपी इस ब्यास वादी ने भारतीय संस्कृति और इतिहास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। निःसंदेह कुलूत प्रदेश, आज का कुल्लू, एक स्वर्ग है, जहां प्रकृति स्वयं अपने पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहती।

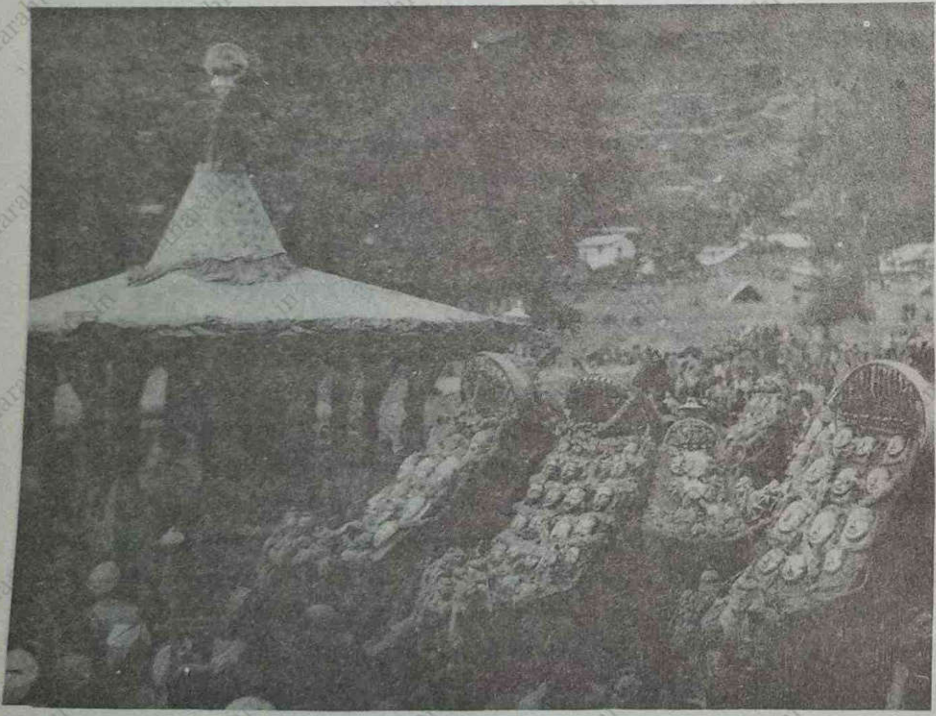

कुल्लु दशहरा में आमंत्रित देवता साभार—लोक सम्पर्क विभाग हि. प्र.

# श्री खण्डेश्वर महादेव

लोकनाथ मिश्र
गांव सिरकोटी, डाक० निरमण्ड
बरास्ता रामपुर बुशहर ज़िला कुल्लू, हि.प्र.

**गौरीशः त्रसितः पुरा वरवतो भस्मासुराच्छिव्यकात्,**
**श्री विष्णोर्वचनात्समाहितमनाः धार्वंस्थितश्चागतः।**
**श्रृंगाणामधिपीप्रगानपदवीं प्राप्तो महद्गौरवात्,**
**तं श्रीखण्डमहेशश्रृंगवपुषं कोणात्रयं संस्मरे।।**

यद्यपि अखिल भारत ही देवाराधना के लिए प्रसिद्ध माना गया है, तथापि उत्तराखण्ड को तो ऋषियों ने देवभूमि ही कह दिया है। उषा और प्रदोष काल में हिमालय की तुंग शिखरों को देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है मानो इस कराल कलिकाल में भी तपः-पूत अनेक महर्षि अपान एवं उदान वायु का निरोध करके शुक्लाम्बर धारण किये हुए अचल समाधि में बैठे हों। इनमें से बहुत सी चोटियों को शिवजी का लिंगविग्रह माना गया है। जिनमें यह 'श्रीखण्ड' भी है। इस श्रीखण्ड शिखर की ऊंचाई समुद्र तल से १७१३२ हजार फुट है। हिमाचल के इस मध्योत्तराखण्ड पर्वत प्रदेश में इस चोटी की बहुत मान्यता है। इस श्रीखण्ड की यात्रा प्रतिवर्ष २० आषाढ़ से १२ भादों तक चालू रहती है। इन दिनों पर्याप्त यात्री यहां आया करते हैं। इससे अतिरिक्त समय में यात्रा करना असम्भव है। यात्रियों को खाद्यादि आवश्यक सामग्री नीचे से ही साथ लानी पड़ती है। निर्मण्ड या बागीपुल से आगे कुछ नहीं मिलता। जाओं (जगद्वन) गाँव में इसके पाण्डा रहते हैं। जिनको साथ लिए बिना यात्रा करना कठिन है।

शिमला से प्रातःकाल पहली या दूसरी बस द्वारा रामपुर विषहर (बुशैहर) व निर्मण्ड होते हुए शाम को बागीपुल पहुंचते हैं। यहां एक साधारण सी दुकान है। यहां से आगे ८ किलो मीटर पैदल चलकर जाओं गाँव मिलता है। जहाँ से श्रीखण्ड यात्रा आरम्भ होती है। पहला विश्रम 'ढंक द्वार' और दूसरा भीम द्वार में होता है। प्रातः नयन सर में स्नान कर जल तथा पुष्प आदि पूजा सामग्री लेकर श्रीखण्ड को जाते हैं। शिवजी की शीघ्रातिशीघ्र पूजा करनी पड़ती है। शाम को फिर भीमद्वार को लौट आते हैं। ढ़क द्वार से आगे श्रीखंड का मार्ग बड़ा ऊबड़-खाबड़ और बीहड़ है। जहां जान हथेली पर रख कर चलना पड़ता है।

**थाणी**

इन दिनों शिवोद्यान में बहुरंगे पुष्प खिले होते हैं। जड़ी-बूटियों के पौधे पुष्पित होकर लहलहाते हैं। बीच में जब पशु-पक्षी बोलते हैं, और भ्रमर गुंजार करते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि मानों ऋतुराज बसंत भी अखिलेश्वर की सेवा में उपस्थित होने जा रहा हो। चारों और बड़ी मनमोहक शीतल मन्द सुगन्धित वायु चलती है। इस सुगन्ध से दिल की धड़कन बढ़ जाती है। जिससे घबराकर कई यात्री वापस लौट आते हैं। कई व्यक्ति प्राणायम का सहारा लिए शिव की आराधन करते हुये आगे बढ़ते हैं। फिर 'नयन सर' मिलता है। यहां का दृश्य तो स्वर्गीय ही है। इसके आस-पास अनेक प्रकार के पुष्पों के बीच श्वेत कमल पाया जाता है। जो शंकर जी को अतिशय प्यारा है। इससे आगे अति विकट चढ़ाई है। केवल बर्फ के ऊपर ही चलना पड़ता है। नयनसर और श्रीखण्ड के बीच का मार्ग बहुत ही संकीर्ण है। दोनों ओर नीचे को शैल-ही-शैल दिखाई देते हैं। सात छोटी-छोटी चोटियां पड़ती हैं, जिन पर बड़ी सावधानी से चढ़ना उतरना पड़ता है। फिर सुघढ़ आयताकार पत्थरों का टाल मिलता है, जिसे लोग 'भीम की बही' कहते है साथ ही दो शिला कपाट मिलते हैं। ये पाषाण लगभग १२-१३ फुट ऊंचे लगते हैं। यह शिवजी का फाटक कहलाता हैं। कहा जाता है कि यहां से शंकर जी के साक्षात् दर्शन होते हैं।

इस श्रीखण्ड शिखर की ऊंचाई लगभग ५०-६० फुट है। और घेरा नीचे ३० फुट तथा ऊपर २० फुट लगता है। चोटी शिव शक्ति युक्त त्रिकोण हैं। इसकी विशषेता यह है कि न तो इस लिंगविग्रह पर बर्फ जमती है। और न ही नीचे जलहरी में दो ढाई हाथ तक जमने पाती है। जब हिमपात बंद होने को होता है, तब शंकर जी पर थोड़ा सा घृतमा लगता है अर्थात् थोड़ी सी बर्फ जमती है। श्रीखण्ड से चतुर्दिक हिम श्वेत शिखर ही दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है मानों सर्वत्र ही सत्वगुण विराजमान हो। यहां पहुंच कर सांसारिक प्राणी (यात्री) रोग शोक सहित क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, जरा और मृत्यु जीवन की इन षडुर्मियों (छेलहरों) से त्राण पा जाते हैं। और मन की सुध-बुध बिसर जाते है। मानों जीव स्वर्ग में आ गया हो। शिव जी के आस-पास पश्चिम उत्तर व पूर्व की ओर हिम सागर ही जमा रहता है। जिसमें कभी-कभी नीलम, हीरा, पन्ना, गोमेद इत्यादि रत्न चमकते हुए दिखाई देते हैं। किन्तु शीत अधिक्य से वहां १०-१५ मिनट ठहरना भी कठिन होता है। इसलिये यात्री गण यथा सम्भव पंचोपचारादि से शैलेश्वर देव की पूजा कर और एक शश (कन्दरा) में गुप्त भेंट चढ़ाकर शीघ्र ही लौट आते हैं। यहां एक जगह पर 'चीलम' रख देने से लपट निकलती है। यह यहां का प्रत्यक्ष दर्शन है परंतु उसका पता विशेष महात्मा अथवा पण्डा लोगों को ही लगता है। यदि निर्मलाकाश हो तो यहां से लाहौल स्पिति, चीन की सीमा, तिब्बत, किन्नौर तथा हिमाचल प्रदेश विषहर के पहाड़ी प्रांतों की भूमि दिखाई देती है। इस सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियों का यहां उल्लेख किया जा रहा है।

## भीमद्वार

तेरह वर्ष के वनवास के समय पाण्डव लोग इस पर्वत प्रदेश में भी पधारे थे। जब विश्राम योग्य कोई स्थान न मिला, तो भीमसेन ने इस गुफा को रातोंरात तैयार किया था। तभी इसे 'भीमद्वार' कहा गया है। यहां से थोड़ी दूरी पर एक राक्षस रहता था, जो शिव यात्रियों को खाता था। उसकी छाती पर जब भीम ने गदाप्रहार किया तो उससे रक्त की धारा निकली। जो लाल पानी नाम से आज भी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि पाण्डव लोग शिव के लिये एक अच्छा सा मंदिर बनवाना चाहते थे। जिस निम्त्ति भीमसेन ने कुछ आयताकार पत्थरों को गढ़ा था। उस टाल को 'भीम की बही' कहते हैं। जो श्रीखण्ड से थोड़ा पहले मिलता है। भीमद्वार से रात को दुर्गम स्थानों पर संजीवनी बूटी भी चमकती हुई दिखाई देती है।

## नयनसर

कहा जाता है कि भस्मासुर से डर कर पार्वती जी रो पड़ी थीं, उनके अश्रुओं से 'नयनसर' का निर्माण हुआ। यह सरोवर कोई तीन फर्लांग गोलाकार वृत्त के रूप में बना हुआ है। पार्वती जी वहां से भागकर नीचे 'जाओं' आई थी। उसके बहुत समय पश्चात् वे बाड़ा कुई स्थान से उत्पन्न हुई बड़ी भराड़ी यहां आई। फिर इन दोनों की इकट्ठी मान्यता होने लगी। इसको मानने वाले इस चायल में १२ गांव हैं। इन दोनों की एकवाक्यता के दिन सौर मास भादों की सक्रांति (साजे) को प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न गांव में 'पड़ेई' नाम का मेला लगता है। जाऊं में इसका मुख्य स्थान व मंदिर है। नयनसर से नयनवती गंगा (कूर्पण सरित) निकली है। जो वहां से लेकर निरमंड इलाके को उपजाऊ बनाती हुई 'ढरोपा' (दत्तनगर) के पास सतलुज में मिलती है। जनश्रुति है कि इसी सरोवर से एक धारा नयन गिर पर्वत श्रेणी के बीचों-बीच बहती हुई लगभग २५-२६ कि.मी. की दूरी पर 'ढंक महादेव' के ऊपर गिरती है। यह स्वयम्भू लिंग निरमण्ड से ३ कि.मी. पूर्व की ओर एक प्राकृतिक गुफा 'देवढांक' में विराजमान है।

श्री खण्डेश्वर महादेव

किंदवंति है कि इस श्रीखण्ड क्षेत्र में भस्मासुर ने महत्ती तपस्या की थी। आशुतोष के 'वरं ब्रूहि' बोलने पर असुर ने भस्म कंगण मांगा। भोले बाबा ने भी 'एवमस्तु' कहकर दे दिया। तत्पश्चात् उसके बल से उसने पहले स्वर्ग पर अधिकार जमाया। फिर कंगण के प्रभाव से अन्यत्र भी अत्याचार करने लगा। कलान्तर में नारद मुनि के बहकाने से पार्वती जी के रूप लावण्य पर मोहित होकर जब शंकर जी को भी भस्मकगंण का निशाना बनाना चाहा तो वे भागकर इस पर्वत श्रेणी पर आ गये। भस्मासुर को देखकर जब तक वे यहां से भागते आगे उसी समय उन्हें विष्णु भगवान के उन्हें सम्बोधित करने की ध्वनि सुनाई पड़ी। जिसे सुनकर वे रुक गये। तभी यह श्रृंग उत्तर की ओर झुका हुआ सा लगता है। पार्वती जी का रूप धारण कर श्री विष्णु ने भस्मासुर से शंकरवत् नर्तन करवाया। नाचते-नाचते जब कंगण वाला हाथ उसके अपने सिर पर गया तो राक्षस स्वयं ही भस्म हो गया।

कहा जाता है कि जब प्रथम पूजन के बारे में सब देवताओं का आपस में झगड़ा हुआ, तो यह निर्णय लिया गया कि जो सारी धरती की परिक्रमा करके सबसे पहले वापस लौटेगा वह प्रथम पूज्य होगा। यह सुनकर सब देवता अपनी-अपनी दौड़ धूप करने लगे। गणेश जी स्थूल तन होने के कारण सोच में पड़ गये। तदनंतर निराश होकर माता पार्वती जी से उपाय पूछा। माता जी के कथनानुसार गणपति ने भूमि पर राम नाम लिखा और उसकी परिक्रमानुसार शंख ध्वनि कर दी। जो सारी सृष्टि में सुनाई दी। उस समय शंकर जी उनके पीछे कार्तिक जी हिमालय की इस नयन गिर पर्वत श्रेणी पर चल रहे थे। श्री लम्बोदर (श्री गणेश) की विजयी शंखध्वनि सुरकर अन्य देवों की भांति ये दोनों भी अचंभित हो गये। और वे दोनों वहां शैल रूप में अवस्थित हो गये। शंकर जी को मनाने या दर्शन करने के लिये सप्तर्षि भी आये। जो मार्ग की छोटी-छोटी उन सात चोटियों के रूप से अवस्थित हो गये। इस श्रीखण्ड से कुछ दूरी पर ही 'कार्तिक स्वामी' नामक शिखर है। वहां जाना असम्भव है। क्योंकि चारों तरफ बर्फ से ढके पहाड़ हैं। यदि कोई किसी प्रकार चला ही जावे, तो उसकी दिव्य देह हो जाती है। पुरातन काल में विश्व योनि ब्रह्मा जी का आदेश सुनकर बहुत से मुनि मेरु पर्वत के दक्षिणवर्ती कुमार शिखर पर गये थे। इस श्रीखण्ड शिखर के आस-पास से कभी-कभी मधुर सुरीली मनमोहक गन्धर्व वाद्यों की ध्वनि सुनाई देती है।

उक्त दो जनश्रुतियां इस श्रीखण्ड महादेव के विषय में सुनी जाती हैं। ये कथानक कोई कल्पित नहीं है अपितु पौराणिक है। विद्वत्समाज इसको एकादश कैलाशों में से एक मानते हैं। महात्माजन इसे ८४ अड्डों के अन्तर्गत मानते हैं। तीर्थांक में 'अष्टोत्तर शिव क्षेत्र' लेख में दिया हैं कि कैवल्यशैल हिमालय पर भगवान शिव 'श्रीकण्ठ' नाम से विराजते हैं। पुन: दो सौ चौहत्तर पवित्र शैव स्थल, शीर्षक निबंध में २७१वां पवित्र शैव स्थल 'श्रखण्ड' श्वेत इन्द्रनील पर्वत हिमालय पर बताया है। यद्यपि पर्वत के ये नाम यहां मेल नहीं खाते। तथापि श्रीकण्ठ व श्रखण्ड नामों का सामंजस्य यहां अवश्य मिलता है। हो सकता है कि इन्द्र नील से नयन गिर तथा श्रखण्ड से श्रीखण्ड अथवा कैवल्य शैल का पारिभाषिक अर्थ लेकर श्रीकण्ठ से ही श्रीखण्ड हो गया। या इन दोनों नामों में से कोई एक इस पर्वत श्रेणी का नाम हो। क्योंकि घटनानुसार एक के अनेक नाम पड़ जाते हैं। कुछ भी हो शिवजी की मान्यता यहां आदि काल से चली आ रही है। शिव पुराण में लिखा है कि श्रीखण्ड नाथ का स्मरण करने वाले लोगों को संपूर्ण मनोरथों की सिद्धि तत्काल हो जाती है। मन की स्थिरता के लिये योगी या भक्तजन उनकी यात्रा अथवा ध्यान अवश्य करते हैं। श्रीखण्ड चंदन को भी बोलते है। जो शीताधिक्य का द्योतक है। सम्भव है शीताधिक्य से ही इस स्थान का नाम ऐसा रहा हो।

# दीपावली–कुछ पर्वतीय सन्दर्भ

**सुदर्शन डोगरा**
**भाषा एवं संस्कृति विभाग, शिमला हि.प्र.**

दीपावली कब से प्रारम्भ हुई कहना कठिन है। ईसा से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व मोहनजोदड़ो और हड़प्पा नगरों की खुदाई में लक्ष्मी की आकृति की मूर्तियां प्राप्त हुई है। जिससे पता चलता है कि दीवाली की देवी लक्ष्मी की पूजा का प्रचलन उस समय भी था। कालान्तर में प्रथम शताब्दी में चीन की पूची जाति के बंशज कुषाण ने उत्तरी-पूर्वी भारत में शासन किया।उन शासकों में कनिष्क महान् हुआ। कुषाण काल की खुदाइयों में भी लक्ष्मी जैसी प्रतिमाएँ निकलीं जो लक्ष्मी पूजन की ओर संकेत करती है इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि दीवाली की देवी लक्ष्मी उस समय भी पूज्य थी।

ईसा से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व के उपनिषदों में एक कथा के अनुसार जो कठोपनिषद् में आती है, में यम द्वितीया का वर्णन है जो दीवाली के तीसरे दिन भैया दूज के नाम से मनाई जाती है। इस कथा के अनुसार एक बार नचिकेता के पिता ने बूढ़ी, दुर्बल तथा बांझ गायें एक ब्राहमण को दान में देने का संकल्प किया जिससे नचिकेता बहुत दुःखित हुए और बोले, 'इससे तो यही अच्छा था कि आप यमराज को मुझे ही दान कर देते।' पुत्र के व्यंग्यमय कटु शब्दों को सुनकर पिता क्रोध से आगबबूला हो उठे और उन्होंने सचमुच ही अपने पुत्र नचिकेता को यमराज को दान में दे दिया। नचिकेता जैसे धर्मात्मा पुत्र को पाकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे ब्रह्मलोक का ज्ञान दिया। उस दिन मृत्यु लोक में सर्वत्र दीये जलाकर प्रकाश किया गया।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में दीवाली पर दीपदान के लिखित विवरण मिलते हैं। गौतम बुद्ध जब ज्ञान प्राप्त कर कपिल वस्तु लौट थे तब उनके स्वगात में प्रजा ने अमावस्या की अंधेरी रात्रि को असंख्य दीपकों के प्रकाश से आलोकित किया था, ऐसा भी उल्लेख है।

ईसवी की चौथी शताब्दी में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मंदिरों तथा मंदिरों के घंटों में दीप जलाने का प्रचलन था। ईसा पूर्व तीसरी शती में वात्स्यायन के कामसूत्र में यक्षरात्रि नाम से दीवाली का उल्लेख है जिसके अनुसार उस दिन लोग दीप जलाते तथा जुआ खेलते थे। ईसा पूर्व पांचवी शती में कल्पसूत्र के अनुसार जब जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की तब अठारह हजार राजा एकत्र हुए, तब उन्होंने कहा, ज्ञान की ज्योति बुझ गई है, अब दीपकों के रूप में भौतिक ज्योति जलाएं।' तबसे इस दिन जैन संप्रदाय के अनुयायी दीपक जलाकर प्रकाश करते हैं।

दीवाली का सम्बन्ध भगवान राम से भी जोड़ा जाता है तथा प्रत्येक भारतवासी की यही धारणा है कि जब श्री रामचन्द्र जी चौदह वर्ष के वनवास को काट कर व रावण को मार कर अयोध्या लौटे तब अयोध्यावासियों ने उनके आगमन पर घी के दीये जलाकर अमावस्या की अन्धेरी रात को प्रकाश से भरपूर कर दिया था। श्री राम का आगमन अयोध्यावासियों के लिए दुःख के अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य सदृश था इसी प्रसन्नता में उन्होंने सूर्यपुत्र दीपकों से अयोध्या को सजाया था। भगवान श्रीराम जगत जननी श्री सीता और लक्ष्मण सहित वापिस लौटे थे। जगन्माता श्री सीता जी साक्षात् लक्ष्मी जी है इसलिए नगर में प्रवेश करते ही चारों ओर सुख-समृद्धि बिखर गई।

एक प्रचलित कथा के अनुसार दैत्यों का संहार करते समय देवी पर जो क्रोध प्रभावी हुआ था वह संहार कर चुकने पर भी शांत न हुआ। मां महाकाली के रूप में विश्व का संहार करने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया। संसार का विनाश होते देखकर सभी देवता भगवान शंकर की शरण में गए तथा देवी के क्रोध को शान्त करने की प्रार्थना करने

लगे। देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर जब भगवान देवी के क्रोध को शांत करने के लिए गये तो उन्हें भी असफलता हाथ लगी। अन्त में वे स्वयं देवी के चरणों में लेट गये। महाकाली के चरण ज्यों ही शंकर भगवान पर पड़े, देवी चौंक उठी यह क्या? अपने पति के शरीर का स्पर्श पाकर उसकी चेतनता आई और क्रोध शांत हुआ। विश्व संहार से बच गया। इस प्रसन्नता में मनुष्यों तथा देवताओं ने दीपमाला करके तथा मिठाई बांटकर प्रसन्नता व्यक्त की। ऐसा भी प्रसंग आता है कि उस दिन भगवान शंकर और महादेवी ने जुआ खेला जिसमें शंकर भगवान हार गये और देवी की जीत हुई।

दीपावली शब्द दो शब्दों, दीप और अवली के संयोग से बना है जिसका अभिप्राय है—दीपों की पंक्ति दीपमाला का त्यौहार पाँच पर्वों की पंक्ति को लेकर आता है। ये पर्व कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से लेकर कार्तिक शुक्ला द्वितीया तक छाये रहते हैं। इन पर्वों से अनेकों ऐतिहासिक एवं धार्मिक आख्यायिकाएं जुड़ी हुई हैं। प्रथम दिन धन त्रयोदशी कहलाता है। सहस्रों वर्ष पूर्व इसी दिन आयुर्वेद के जनक भगवान धनवन्तरी समुद्र मंथन से अमृत कलश लेकर अवतरित हुए थे। इस दिन सभी लोग अपने-अपने घरों की सफाई लिपाई, पोताई तथा साज-सज्जा को बढ़ावा देते हैं।प्रत्येक घर में नये बर्तन खरीदे जाते हैं। लोग पीतल, ताँबें, कांसे, चांदी व स्टील के बर्तन खरीदते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस दिन बर्तन खरीदने से घर में धन की वृद्धि होती है। व्यापारी लोग इस दिन अपने बहीखाते बन्द करते हैं। अपने बहियों में चांदी के सिक्के तथा लक्ष्मी के चित्र रखते हैं। दूसरे दिन नरक चतुर्दशी का पवित्र पर्व होता है। अपने शत्रुओं का विनाश करने हेतु इस दिन भगवान विष्णु का पूजन किया जाता है क्योंकि इस दिन भगवान कृष्णा ने अपने शत्रु नरकासुर का वध किया तथा उसकी कारागार में पड़ी सोलह हज़ार सुंदर युवतियों को मुक्त किया। मुक्त होने के पश्चात् उन्होंने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपने रनिवास में स्थान दे। उनकी प्रार्थना को सुनकर श्री कृष्ण ने उन्हें शरण देकर अभयदान दिया। इसी दिन भगवान विष्णु ने नृसिंह रूप धारण कर अपने भक्त प्रहलाद की रक्षा की तथा हरिण्यकशिपु के अत्याचारी शासन से लोगों को मुक्त करने हेतु इस प्रबल दैत्य का वध किया था। देवताओं की आसुरी प्रवृत्तियों पर विजय पाने वाला यह दिन शत्रुनाशक पर्व बन गया। तृतीय दिवस महालक्ष्मी के पूजन का दिन है।इसी दिन समुद्र मन्थन के पश्चात् ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री श्री महालक्ष्मी का अविर्भाव हुआ था। समस्त भारतवर्ष में इस दिन को दीपावली महोत्सव के रूप में मनाया जाता है। समस्त भारतवर्ष के गांव, नगर व महानगर महालक्ष्मी के स्वागत हेतु सजधज कर बड़ी उत्सुकता से इस दिन की प्रतीक्षा करते है। बच्चों का यह अत्यन्त प्रिय त्यौहार है। रंग बिरंगे-वस्त्र, खिलौनों से सजी दुकानें आतिशबाजी के भण्डार प्रत्येक बालक के जीवन में हर्षोल्लास भर देते हैं।

दीपावली का सम्बन्ध दानवीर राजबलि की कथा से जोड़ा जाता है। दानवेन्द्र राजा वलि की दान की महिमा को देखकर देव राज इन्द्र घबरा गए। उन्हें सन्देह हो गया कि कहीं यह मेरा सिंहासन न छीन ले। उन्होंने अपनी चिन्ता भगवान विष्णु से व्यक्त की। भगवान दानवीर की महिमा को सुनकर उसकी परीक्षा लेने चले। इतने महान् भगवद् भक्त की परीक्षा लेना कोई सुगम कार्य न था। बहुत सोच विचार करने के उपरांत भगवान ने अपना वामन रूप बना लिया और राजा वलि की ड्योढ़ी पर जा कर खड़े हो गये। अपने दर पर आए बौने ब्राह्मण को देखा। राजा ने ब्राह्मण को भिक्षा के रूप में अन्न तथा स्वर्ण देना चाहा किन्तु ब्राह्मण ने लेने से इन्कार करते हुए कहा, राजन् मुझे तो केवल कुटिया बनाने के लिए तीन पग भूमि चाहिए। राजा ने ब्राह्मण देवता के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा वलि का गुरु शुक्र भगवान की चाल को जान गया और वह संकल्प के स्रोते में मक्खी का रूप धारण करके बैठ गया जिससे जल निकलने से बाधा पड़ गई। उधर वामन भगवान भी सब जान गये। उन्होंने दूब से स्रोते को हिलाया जिससे शुक्र की आंख जाती रही। आज भी कहावत प्रसिद्ध है, जब कोई दान देते हुए व्यक्ति को रोके तब उसे कहा जाता है कि वह 'शुक्र क्यों बनता है?'

अपने गुरु के इशारे को समझते हुए भी राजा वलि ने तीन डग धरती देने का संकल्प कर दिया। भगवान ने पहले डग में पृथ्वी तथा दूसरे डग में स्वर्ग लोक को माप लिया तथा राजा वलि से बोले, 'अब बतालाइये तीसरा पग कहाँ रखूं?' यह सुनकर राजा वलि ने भगवान के आगे अपना सिर झुकाते हुए कहा, भगवान् तीसरा पग इस पर धरिये।' भगवान ने ज्यों ही अपना चरण राजा वलि के सिर पर रखा वे दोनों पाताल में पहुंच गए। पाताल में पहुंच कर राजा वलि को भगवान ने आज्ञा दी कि वह पाताल का अटल सिंहासन सम्भाले। राजा वलि की दानवीरता को देखते हुए

भगवान ने उससे वर मांगने को कहा, राजा बलि ने उत्तर दिया, भगवान ! आपने मेरी परीक्षा ली परंतु छलपूर्वक। अब आप मुझे यदि वरदान देना ही चाहते हो तो यह वर दीजिए कि मैं प्रतिक्षण आपको अपनी आंखों के सामने पाऊं। भगवान ने तथास्तु कह कर उसे वरदान दे दिया। भगवान् भक्त के वशी होकर राजा बलि के साथ रहने लगे। राजा बलि जब सो जाते, भगवान उनके चरणों के पास खड़े रहते ।ज्यों ही उनकी आंख खुलती प्रभु के दर्शन पर गदगद हो जाते।

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया। नारायण का कोई पता नहीं कहाँ चले गए। लक्ष्मी जी रात-दिन चिंतित रहने लगीं। एक बार नारद ने उन्हें सारी बात सुनाई कि भगवान तो राजा वलि के यहां पाताल में पहरेदार नियुक्त होकर उसकी चाकरी कर रहे हैं। अपने पति को छुड़ाने के लिए श्री लक्ष्मी जी साधारण स्त्री के भेष में पाताल पहुंची और एक रक्षा सूत्र राजा वलि की कलाई पर बांधती हुई बोली राजन्। मैं तुम्हारे जैसे दानवीर को अपने भाई के रूप में देखना चाहती हूँ। राजा बलि की कोई बहन नहीं थी। धर्म बहन को पाकर राजा फूला न समाया। राजा ने उसका खूब आदर सत्कार किया तथा नाना प्रकार के अमूल्य रत्न और मणियां उनके आगे रखते हुए कहने लगा, बहन आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इस समय तुम जो चाहो मांग लो। फिर क्या था। लक्ष्मी ने तुरन्त अपने भाई से कहा, भैया यदि तुम मुझे संसार का समस्त वैभव देना चाहते हो तो अपने चौकीदार को मुझे दे दो क्योंकि पति का वियोग मुझ से नहीं सहा जाता। यह सुनकर राजा बलि खिलखिला कर हंस पड़ा और बोला, पहले पति ने छल किया,अब आप बहन बनकर छल गई। ठीक है तुम अपने पति को ले जा सकती हो केवल एक शर्त पर, कि वर्ष में भगवान तीन मास तक मेरे यहाँ पाताल में निवास करेंगे। अपने भाई को वचन देकर लक्ष्मी जी भगवान सहित बैकुंठ को लौटी। वलि की दान की महिमा को स्मरण रखने के लिए भगवान ने भू-लोक वासियों को आज्ञा दी कि वे इस दिन पृथ्वी पर दीप महोत्सव मनाएं ताकि दान की महिमा का दीपक सबके जीवन को आलोकित करता रहे। जो लोग ऐसा करेंगे उनके पितरों का उद्धार होगा और उन पर सदा लक्ष्मी की कृपा बनी रहेगी। पाताल में रहते हुए राजा बलि ने कार्तिक मास में दीप दान किया जिससे उसे मोक्ष प्राप्त हुआ।

देश के कुछ भागों में अलक्ष्मी को भगाने के लिए अर्ध-रात्रि को, जब सब सो जाते हैं, घर की स्त्रियां हाथ में झाड़ू लेकर अलक्ष्मी को भगाती है। इसके अतिरिक्त अनेकों सन्त महात्माओं के अभिर्भाव तथा निर्वाण की कथाएं दीवाली से जुड़ी हैं। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य दीवाली के दिन अवतरित हुए है। स्वामी रामतीर्थ महाराज का जन्म भी दीवाली को हुआ था। उज्जैन के चक्रवर्ती सम्राट दीवाली को सिंहासनारूढ़ हुए थे। जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर तथा आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसी दिन निर्वाण प्राप्त किया था।

## हिमाचल प्रदेश में दीवाली उत्सव :

हिमाचल प्रदेश के मैदानी जिलों में दीवाली पर विशेष प्रकार के रंगोली रेखाचित्रों द्वारा आंगन को सजाया जाता है। ब्राह्मण वर्ग को छोड़ कर शेष जातियों के लोग अपने आंगन में काली मिट्टी तथा लाल गेरु से चौके डाल कर उन्हें हल्के नीले गोलू से रंगोली द्वारा सजाते हैं। आंगन से भीतरी कमरे तक लक्ष्मी के चरण चिन्ह बनाए जाते हैं। सूर्य अस्त होते ही घर के एक कोने में श्री लक्ष्मी व गणेश के चित्रों को सजा कर रखा जाता है। चान्दी के गहने लक्ष्मी के आगे रखे जाते हैं। घर के सभी बड़े-छोटे इकट्ठे बैठ कर आयुक्रम से बारी-बारी जल, कुमकुम, अक्षत, पुष्प व धूपदीप से लक्ष्मी तथा गणेश का पूजन करते हैं। एक पटड़ी पर सरसों के तेल के दीये जलाए जाते हें। पूजन से पूर्व घर का मुखिया उन दीपों को आंगन में बनाए चौंके पर रख कर अपने पितरों का पूजन करने के पश्चात् उन्हें भीतर ले आता हैं। जब सभी पूजा कर चुकते हैं तो उन दीयों को घर में इधर-उधर बिखेर दिया जाता है। उस दिन सभी लोग घर-घर मिठाई बांटते हैं। रात्रि के भोजन में माश की दाल, चावल तथा अरवी के पत्तों का साग बनाना शुभ समझा जाता है। कई स्थानों पर माल पूड़े, बबरु, भल्ले आदि पकवान बना कर बांटने का भी प्रचलन है। इन दिनों धान की फसल किसान के घर आ चुकी होती है इस लिए जो सम्पन्न किसान होते हैं वे दीवाली पर ही चावल का नवान्न लगाते हैं। मांस खाना और मदिरा पीना भी कई भागों में पसंद किया जाता है। कुछ लोग रात-रात भर जुआ भी खेलते हें जिससे कुछ तो मालामाल और कुछ भिखारी भी बन जाते हैं।

## गोवर्धन पूजा

दीवाली के अगले दिन पड़वा को गोवर्धन पूजा का त्यौहार होता है। इस त्यौहार का सम्बन्ध भगवान कृष्ण से है। एक बार राजा इन्द्र ने कुपित होकर भारी वर्षा की। इस विनाशकारी वर्षा से सभी मनुष्य व पशु पक्षी अपने जीवन की आशा खो बैठे। ऐसी दशा में वे सब भगवान कृष्णा की शरण में गये। भगवान उन सब को गोवर्धन पर्वत के पास ले गए और गोवर्धन पर्वत को अंगुली पर धारण कर सब को उसके नीचे शरण दी। मेघ बरसा कर जब इन्द्र हार गया तब भगवान श्री कृष्ण अपने परिजनों सहित वापिस गोकुल में लौट आए। तभी से भगवान का नाम गोवर्धनधारी पड़ा। आज भी इस अवसर पर कई स्थानों पर गौओं के गले में फूल मालाएं पहना कर उनकी पूजा की जाती है।

वाराणसी के अन्नपूर्णा मंदिर में अन्नकूट उत्सव मनाया जाता है। ब्रज में इसे अन्न कूट कहते हैं। इस दिन वहाँ भांति-भांति के खाद्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं। राज्य स्थान का नाथ द्वारा अन्न कूट के लिए देश भर में प्रसिद्ध है। नेपाल में इस दिन गौओं के लिए विशेष पर्व मनाया जाता है। कई स्थानों पर बैलों को सजा कर उनके दंगल करवाए जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में सौभाग्यवती स्त्रियां मिट्टी की ओली में चावल भर कर उनमें चूड़ियां, परांदा, बिन्दी, मेंहदी, मिठाई रख कर अपनी धर्म बहन को देती है। दोनों बहनें परस्पर 'ओली' बदलती है। कुछ जातियों के यहां इस त्यौहार को माताएँ अपने पुत्रों को तमोल लगाती (टीका करती) और बेटे उसके बदले अपनी माता को वस्त्र या रुपये देते हैं। ओली बदलाने व तमोल लगा चुकने के बाद सभी स्त्रियाँ क्यारियों में धानिया बीज कर उस मिट्टी की जल, कुमकुम, पुष्प अक्षत, मौली आदि से पूजा करती है। धनिया बीजना अतिशुभ समझा जाता है।

## भैया दूज

पांचवां उत्सव भैयादूज के नाम से जाना जाता है। जिसे यमद्वितीया भी कहा जाता है यह त्यौहार भाई बहन के प्यार का परिचायक है। यमुना यम की बहन है। ऐसा कहा जाता है कि इस दिन यम ने अपनी बहन यमुना के घर भोजन किया था। भोजन करने के उपरांत यम ने अपनी बहन को वरदान देते हुए कहा, जो व्यक्ति इस दिन बहन के घर भोजन करेंगे उन्हें वर्ष भर मृत्यु भय नहीं होगा। हमारे प्रदेश में भैया दूज को बड़े हर्ष व उत्साह से मनाया जाता है। इस दिन बहनें प्रातः नहा धोकर अपने भाइयों के लिए सुन्दर उपहार, जैसे कमीज का कपड़ा, या दोनों वस्त्र, स्वैटर, रुमाल आदि थाली में रख कर उसके साथ मिठाई, अखरोट, बादाम, गरी गोला रख कर भाई के माथे पर अंगूठे से तिलक करती हैं, फिर सिर पर तीन बार रुपये पैसे वारने के उपरांत उपहार से भरी थाली भाई को थमा देती हैं। भाई उसके बदले बहन के चरण छूकर यथाशक्ति रुपये-पैसे, वस्त्र आभूषण आदि देता है। दोनों आपस में गले मिलते हैं। टिक्का लगाने की इस क्रिया को स्थानीय भाषा में 'तमोल लगाना' कहते हैं। टीका लगाते समय आमने-सामने दो घी के छोटे चौके, जिन्हें स्थानीय बोली में 'मंदलू' कहते हैं, डाले जाते हैं। दोनों बहन-भाई घी के चौके पर खड़े हो जाते हैं, एक पैर बहन अपने चौके पर तथा दूसरा भाई के चौके पर रख कर टीका करती है। इस प्रथा के संबंध में एक लोक कथा इस प्रकार से प्रचलित है—

एक बहन थी। उसका एक भाई था। दोनों में बहुत प्रेम था। एक बार उसके भाई को सांप ने काट लिया और वह चल बसा। बहन भाई के वियोग में रात-दिन दुःखित रहने लगी। समय बीतता गया। रक्षा-बन्धन का दिन भी बीत गया। बरसात के बाद दशहरा और फिर दीवाली आ गई। बहन ने सभी का स्वागत आंसुओं से किया। दीवाली की रात्रि को लक्ष्मी से उसका दुःख न देखा गया और वह ढाढ़स बन्धाने उसके सम्मुख खड़ी हुई। परम सुंदर स्त्री ने जब उसका दुःख सुना तो उसने उससे वायदा किया कि वह यम राज को कह कर उसके भाई को भैया दूज वाले दिन उसके पास भिजवा दिया करेंगी परंतु उसने उसे कहा, समय का ध्यान रखना। तुम गाय के गोबर का एक चौका डाल दिया करना जब तक वह नहीं सूखेगा तुम्हारा भाई तुम्हारे पास रहेगा। चौका सूखते ही वह पुनः लौट जाया करेगा। इस प्रकार तुम्हारे भाई को प्रति वर्ष

भैया दूज को यहां भिजवा दिया करुंगी। यह कह कर लक्ष्मी अर्न्तध्यान हो गई। बहन ने प्रातः उठ कर स्वादिष्ठ व्यञ्जन तैयार किये बहुत से उपहार सजा कर भाई के लिए गोबर का चौका डाल दिया। चौका डालते ही भाई उसके पास पहुंच गया। दोनों एक दूसरे से मिलकर जी भर कर रोये। बहन ने स्वादिष्ट व्यञ्जनों से युक्त भोजन परोस कर भाई को तिलक किया और उपहार भेंट किये। भाई ने बहन को प्यार भरा आशीर्वाद दिया। दोनों आपस में बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद भाई का ध्यान चौके की ओर गया। वह सूखने ही वाला था। बहन से विदाई लेकर भाई चौका सूखते ही यमपुरी को चला गया। वह फिर इस दिन की प्रतीक्षा करने लगी। इसी प्रकारकई वर्ष बीत गए। एक बार उसकी एक सखी ने उससे उसकी उदासी का कारण पूछा। उसने अपनी सारी कथा कह सुनाई। सखी बहुत चालाक थी। वह बोली, 'बहन ! मैं तुम्हें ऐसा उपाय बतलाऊंगी जिससे तुम्हारा भाई कभी भी वापिस नहीं जा सकेगा।' उसने उसे गोबर के स्थान पर घी का चौका डालने को कहा क्योंकि घी का चौका तो कभी नहीं सूख सकता था। उसने वैसे ही किया। नियत समय पर भाई आ पहुंचा। दोनों प्रसन्नता पूर्वक मिल कर बातचीत करने लगे। भाई ने देखा कि चौका तो सूख ही नहीं रहा है। तब बहन ने बतलाया कि अब तुम कभी नहीं जा सकोगे। इसके उपरांत एक दिन लक्ष्मी जी उसके पास आई और बोली तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया अन्यथा इसी प्रकार भैया दूज को सभी के भाई बहनों को मिलते रहते। तभी से आज भी बहनें भाई के लिए घी का चौका डालती है।

भैयादूज को कोई भी बहन कपड़े नहीं धोती। कई बहनों के भाई दूर होते हैं वे डाक द्वारा अपने भाइयों को टीका भेजती हैं। जिनके अपने सगे भाई नहीं होते वे इस दिन किसी अन्य युवक को टीका लगाकर अपना 'धर्मभाई' बना लेती हैं ये भाई भी सगे भाइयों के समान बहन के प्रति अपना पूरा कर्त्तव्य निभाते हैं। ससुराल में रह रही बहनें अपने भाइयों की संख्या में अखरोट अथवा बादाम रख कर उनको टीका लगा कर पूजती हैं। जितने भाई होते हैं उतनी कुमकुम की बिंदिया दीवार पर लगाती हैं। पूजा कर चुकने के उपरांत सूर्य को अर्घ देकर क्यारी में धानिया बीज कर क्यारी की पूजा करती हैं। भैया दूज के बाद भाई भी अपनी बहनों को आमंत्रित करके भोजन खिलाते हैं।

श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर परिसर चम्बा छाया—हाकम शर्मा

# हिमाचल प्रदेश की सामाजिक परंपराएं–एक परिचय

कृष्णचन्द काएथ
वर्मा लॉज ऐरन विला, शिमला-३

नवीनता की चमक-दमक से चकाचौंध होकर हम प्राचीनता की महानता को बिल्कुल भूलते जा रहे है। सनातन काल से संयोजित सांस्कृतिक संपदा को न पहचानते हुए निरर्थक प्रयत्न कर अपने लिए एक नया पथ तलाशने में तल्लीन है, यानि अपने घर-आँगन से जो मार्ग स्पष्ट मंजिल तक सरलता से ले जाता हो उसके विपरीत हम दूसरो के कहने पर उबड़-खाबड़ उजाड़ जंगल को काटकर नया रास्ता तलाशते फिरते हैं। इससे न केवल एक-अनेक उलझनें ही पैदा होती हैं अपितु हमारी प्रगति के लिए आवश्यक समय भी व्यर्थ ही चला जाता है। हमारे ऋषियों-मुनियों ने जो हमारे हितों की रक्षा हेतु वैदिक काल में जिन सामाजिक नियमों (रीतिरिवाजों) का सृजन किया वे आज भी कुछ हद तक हमारे पर्वतीय समाज में सजीव हैं।उनके सुदृढ़ आधार पर हमारा समाज आज विश्व के दूसरे नित्य बदलते समाज से अधिक सबल और समृद्ध है। अर्थात् पाश्चात्य जगत में नये पनपे दार्शनिकता के नये सिद्धांतों के वशीभूत न होकर अपनी सबल संस्कृति के भीतर झाँके और निखार-संवार कर प्राचीन आदर्श रीति-रिवाजों को एक जुट होकर अपनाएं।

महाभारत काल में हमारे हिमाचल प्रदेश को गिरिखण्ड यानि हिम प्रदेश के नाम से जाना जाता था। इस प्रदेश के अन्तर्गत त्रिगर्त, कलिन्द, किन्नर प्रदेश, कल्लूत देश आदि भू भाग आते थे। त्रिगर्त के अन्तगत वर्तमान काँगड़ा, हमीरपुर ऊना, कलिन्द यानि वर्तमान सिरमौर जिला, कुल्लूत प्रदेश यानी वर्तमान कुल्लू जिला, किन्नर प्रदेश यानी वर्तमान किन्नौर, लाहौल स्पिति, रामपुर तथा रोहड़ू आदि क्षेत्र। इन सब तत्कालीन भूखण्डों के रीति-रिवाज आज भी परम्परागत ढंग से समस्त हिमाचल प्रदेश में सजीव है।

### विवाह सम्बन्धी रीतिरिवाज

हमारे पर्वतीय समाज में ऐसे अवसरों पर अत्यधिक पारिवारिक प्रेम और सहयोग की भावना दिखाई देती है। जब किसी परिवार में किसी लड़के या लड़की का विवाह निश्चित हो जाता है तो सारे भाई-बान्धव लगभग पंद्रह दिन पहले लड़के और लड़की के परिवार वालों को तरह-तरह से घर के काम-काज में सहयोग देना शुरु कर देते हैं। विवाह में आने वाले अतिथियों को ठहराने और बैठाने की व्यवस्था के बारे में संयुक्त रूप से देर रात तक विचार-विमर्श होता है।

### पनोहती की प्रथा

विवाह तिथि से सात-आठ दिन पूर्व बिरादरी के सभी लोग बारी-बारी से लड़का और लड़की को अपने घरों में भोजन के लिए आमंत्रित करते है। इस प्रथा के पीछे कुछ हद तक भावना रही होगी तो बाकी हद तक उन दोनों को वैवाहिक जीवन में प्रवेश से पूर्व होने वाली मानसिक परेशानियों से कुछ देर तक दूर रखने का प्रयास भी होगा।

## बरातियों के लिए भोजन की व्यवस्था

विवाह की तिथि से तीन दिन पहले ही सारे गाँव बिरादरी के स्त्री-पुरुष एकत्रित होकर कामकाज निपटाने के लिए उन सारे कार्यदिवसों को कार्य के अनुसार आपस में बांट लेते हैं जिससे विवाह वाले दिन सारा कार्य व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न हो सके। जैसे एक दिन सब लोग मिलकर जंगल से जलाने की लकड़ियां बीन तथा काट कर इकट्ठा करते हैं। वर-वधू दोनों के घरों में लकड़ियों के 'कुन्नू' अर्थात ढेरियां लगा दी जाती हैं। इसी तरह से सब मिल कर घरों की सफाई और पहनने-सोने के कपड़ो की धुलाई, आनाज की सफाई, मसालों के कूटने छानने का कार्य हाथों-हाथ सम्पन्न हो जाता है। समाज के प्रत्येक वर्ग ने अपने लिए कार्य जुटाए हुए होते हैं जैसे कि बढ़ई तोरण द्वारा बनाने में, कोली लोग बरातियों के बैठने वाली जगह को गर्म रखने के लिए लकड़ी के बड़े-बड़े 'घैने' तैयार कर रखते हैं (यदि विवाह ठंड के मौसम में सम्पन्न होना हो तो) बजन्तरी वाद्ययन्त्रों को बजाने का कार्य तथा स्त्रियां स्वागत गीत गाने तथा जलपान आदि की व्यवस्था करती है। कन्या की विदाई से पूर्व सब संबंधी तथा अन्य लोग उपहार स्वरूप (जिसके बारे में लड़की के परिवार से पहले ही तय कर लिया गया होता है) घर गृहस्थी का सामान अथवा रुपया लड़की को देते हैं जिससे लड़की के परिवार का आर्थिक बोझ काफी हद तक कम हो जाता है। किन्नर प्रदेश में तो वहाँ के रिवाज के अनुसार रिश्तेदार शराब, अनाज, बकरा आदि अपने घरों से वर-वधू के घर को इस शुभ अवसर पर लाते हैं। जिला शिमला तथा सिरमौर में रिवाज के अनुसार दोनों पक्षों के ननिहाल वाले एक वक्त का खाना सारे बरातियों यानि आमंत्रित लोगों को खिलाते हैं।

## बुआर, दारच

जब गांवों में किसी के घर निर्माण का कार्य हो रहा होता है। अधिकतर लकड़ी के घर होने के कारण बड़ी-बड़ी भारी कड़िया पत्थर आदि लाने के लिए गांव भर के पुरुष उस व्यक्ति के साथ इस कार्य को सम्पन्न करते हैं जिसे 'दारच' कहा जाता है और कार्य करने वाले लोगो को 'दारचू'। इसी प्रकार कृषि कार्य के लिए जैसे गुड़ाई-कटाई और घास काटने के कार्य को भी सामूहिक रूप से सम्पन्न किया जाता है उस कार्य को सम्पन्न करने वालो को 'बुआरा' कहा जाता है पर 'दारच' के विपरीत बुआरे में चार-छ:ह लोग ही कार्य को सम्पन्न करवाते हैं।

## गौबरैन

जब साल भर का जमा गोबर खेतों में डालना होता है तो एक दिन 'गौबरैन' का दिन रखा जाता है जिसे गांव के बलिष्ठ युवक संयुक्त रूप से सम्पन्न करते हैं। गाते-बजाते बात की बात में गोबर दूर-दूर के खेतों में पहुंचा देते हैं। सिरमौर और चौपाल तहसील के चेतास्तोता के वासी हुड़की बजाते हुए इस कार्य को सम्पन्न करते हैं।

## ग्वाला

गांव भर के सारे पशुओं को घास चराने के लिए घरों से बाहर ले जाने के लिए किसी एक व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जिसे गांव वाले पहनने के लिए वस्त्र तथा खाना आदि बारी-बारी से ग्वालतन के रूप में देते हैं।

## मेट

जिला किन्नौर तथा रियासत बुशहर में मेट की नियुक्ति एक ऐसे व्यक्ति के रूप में होती है जिसके पास छोटी-मोटी सभी ज़रूरत की वस्तुओं को ग्राम वासियों द्वारा जमा कर दिया जाता है। गांव में किसी सरकारी कर्मचारी अथवा

अधिकारी के आने पर उसके खाने-पीने ठहरने की व्यवस्था मेट द्वारा उन्हीं वस्तुओं से की जाती है इस तरह से किसी भी प्रकार का राजकीय कामकाज सुचारु रूप से सम्पन्न होता है।

### भेड़ों की शाळ

पुराने समय में लोग जानते थे कि यदि फसल के दिनों में गांव-भर की भेड़-बकरियां आदि गांव में ही रहीं तो फसलों को तो नुकसान होगा ही साथ ही उनकी देखभाल में कार्य में व्यवधान उत्पन्न होगा। अत; युक्तिपूर्ण ढंग से कई गांव की भेड़-बकरियों को ऊंची-ऊंची चरागाहों में चुगाने का निर्णय लिया गया। इस तरह से पाले यानि सात-सात दिनों बाद चरवाहो जिन्हें स्थानीय बोली में 'भेराले' कहा जाता है अपनी 'पाली' बदल कर इस कार्य को करने लगे तथा भेड़ बकरियों के इस समूह को 'शाल' कहा जाने लगा। यह प्रथा ऊपरी हिमाचल में आज भी यथावत् चली आ रही है।

### देवाली

विशेष तौर पर सावन-भादों के महीने में 'देवता' अपनी प्रजा के सुख दु:ख जानने के लिए अपने अधीनस्थ गांवों के दौरों पर निकलता है। उस समय देवता के साथ उसके 'कामदार' अन्य गांवो के वरिष्ठ लोग भी गाँव-गाँव जाते हैं।इन सभी को 'देवाली' कहा जाता है अर्थात् देवता के साथ आए गाँवों के लोगों का आदर-सत्कार बड़े प्रेम के साथ किया जाता है। यह एक संयुक्त रूप से समाज की एकता के निर्माण का आधार है।

### खुम्बली

खुम्बली एक घोड़ी-परगने के प्रतिष्ठित लोगों की बैठक के रूप में होती है। जिसमें गांव में देवता संबंधी यज्ञ-अनुष्ठानों धर्म स्थलों की पवित्रता गांव या उस इलाके की सुख-समृद्धि के बारे में आयोजित की जाती है। खुम्बली में लिया गया कोई भी निर्णय सबके लिये मान्य होता है। इसके बारे में असहमति कुछ-कुछ देवता के दोष भय के कारण भी प्रकट नहीं की जाती है।

इस प्रकार अन्य भी अनेक पुरातन रीति-रिवाज ऐसे हैं जो आज भी समाज को श्रेष्ठ बना सकते हैं। यदि समाज मे समाजवाद को लाना है तो सर्वप्रथम तो हमें अपनी पुरानी विशिष्ट सामाजिक आदर्शों तथा रीति-रिवाजों पर जमी आधुनिकता की धूल को हटाना होगा और पुरातन सामाजिक हितकारी नियमों को निखार संवार कर सामने लाना होगा। अन्यथा हम दूसरों के नियमों और सिद्धांतों के अन्धे अनुकरणों में अपने अमूल्य आदर्शों को व्यर्थ ही खो देगें।

# काँगड़ा के लोहड़ी गीत-लुकड़ियाँ

सुरेन्द्र शर्मा
शिफ्ट इंजीनियर शानन पावर हाउस
जोगिन्द्र नगर हिमाचल प्रदेश-१७६१२०

वैसे तो लोहड़ी समस्त उत्तर भारत का लोकप्रिय त्यौहार है। शीतकालीन यह त्यौहार पहाड़ी (हिमाचली) जनपद में सबसे प्रिय त्यौहार है। जहाँ लोहड़ी का संक्रांति एक धार्मिक पर्व है, वहाँ इसका सांस्कृतिक महत्व भी कम नहीं है। काँगड़ा जिले में मनाये जाने वाली लोहड़ी और गाये जाने वाली लुकड़ियों का अपने आप में एक अलग ही रूप देखने को मिलता है। जिसका लोक संस्कृति में विशिष्ट स्थान है।

जब सारा प्रदेश बर्फ की सफेद चादर से ढका कड़ाके की ठण्ड में ठिठुर रहा होता है, तब भी लोहड़ी का उत्साह लोगों में देखते ही बनता है। जनवरी के दूसरे सप्ताह में 'लोहड़ी' का त्यौहार मनाया जाता है। लेकिन बच्चे आठ-दस दिन पहले ही लोहड़ी माँगना शुरु कर देते हैं। देर रात तक बच्चे हाथ में मशालें लिये सुनसान पहाड़ी रास्तों पर एक गाँव से दूसरे गाँव आते-जाते देखे जा सकते हैं।

लोहड़ी माँगने के लिये गाये जाने वाले गीतों को लुकड़ियाँ कहा जाता है। लड़कों और लड़कियों की लुकड़ियों में अन्तर होता है। काँगड़ा में लड़कों द्वारा गाई जाने वाली एक लुकड़ी इस प्रकार है :—

घरूंडू-मुंडू वाड़िया
जट्टी मट्टि
घेरनी
जट्टे नै नी छेड़नी
जट्टे-जट्टू पुकारिया
जाई माधो मारिया
माधो कित्ता ताणा-वाणा
विच निकलिया तरखाण
तरखाणे घड़ियाँ कड़ियाँ
ससू नुआँ लड़ियां
ससूँ बटिया धागा
निकलिया मेहतावा
मेहतावे चारे डंगरे
डंगरे पै आली
निकलिया दसाली
दसालियें घड़िया डूना
इस घरें सूना।

इस लोहड़ी गीत में माँगने वाला दुआ करता है कि इस घर में सोना है। वह दाता की समृद्धि और खुशहाली की कामना करता है। इन समस्त लुकड़ियों की तुकबन्दी में लोहड़ी माँगने वाला बड़े विनोदी ढंग से घर-घर जा कर मंगल कामना करता है। इसी प्रकार के एक अन्य गीत में पुत्र कामना की जाती है।

दाणा भई दाणा,
बागे बखी जाणा।
बागे मिली घोड़ी,
घोड़ी है कुम्हारे दी।
कुम्हारे दित्ती मंगी,
मंगी है गुज़रे दी,
गुजरें दित्ति फ्कोट्टी,
फ्कोट्टी है सौहरे दी।
सौहरें दित्ति लाड़ी,
लाड़ी है लाड़े दी।
लाड़िया जम्मयां मुन्नु,
मुन्नुयें लाई धोती।
धोतिया पेई जूँ,
लै लाड़िये तूँ।

इसी प्रकार लड़कियों की लुकड़ियों में भाइयों के जीवन और सेहत की मंगल कामना की जाती है। एक छोटा सा गीत इस प्रकार है।

अंबरे लगे सौ-सौं तारे,
छोटे-बड़े वीर प्यारे।
भावो मेरी पलंगे ऊपर बोहे।
मैं पकांदियाँ पोल रिनदियाँ साग,
खा मेरा भाई, सागे दे नाल।

आकाश के तारों की तरह हमें छोटे-बड़े सभी भाई प्रिय हैं। भाभियाँ पलंग पर बैठकर राज करती हैं। मैं अपने भाई को रोटी और साग बना कर खिलाती हूँ। भाई के प्रति बहन का स्नेह इस लुकड़ी में साफ नज़र आता है। एक अन्य लुकड़ी में भाई के घर पुत्र होने की बधाई है।

कैंढा जी लुकड़िये कैंढा जी,
कैंढे दी बेल बधाई जी,
अखाँ च कज्जल पैरां च नूरी
नूरी दी ढूँ-ढूँ घड़ा जी,
घड़े दा मालिक मोती जी,
फ्रुड्डे फ्रुटाये तेरी माई जी,
भाई ने हँस घढ़ाया जी,
तेरे कैंढे दे गल पाया जी।

इस प्रकार लोहड़ी से पूर्व ही लड़के, लड़कियाँ लुकड़ियाँ गा-गा कर घर-घर से मक्का, आटा और पैसे माँगते हैं। लोहड़ी की रात तो बच्चों के लिये ज्यादा उत्साहपूर्का होती है। इस रात को लुकड़ी भी विशेष होती है। सुबह के धुँधले एक लड़के हिरण बनाकर घर-घर जा कर नाचते और लोहड़ी माँगते फिरते हैं। जब सुबह होने लगती है तो लड़कियाँ लोहड़ी गाने निकल पड़ती हैं, इसे राजड़े कहते हैं।

मकर संक्रांति से पहली रात लड़के एक को हिरण बनाते हैं। सिर पर लकड़ी के सींग लगा कर आँगन में नाचते और गाते है। इस रात तो बच्चों के साथ-बड़े बूढ़े भी हो लेते हैं। कुछ तो ढोल, बाजे और नर्तक भी साथ ले चलते हैं। सब पार्टियों में सबसे अच्छा हिरण बनाने की प्रतिस्पर्द्धा लगी होती है। साज, श्रृंगार कैसा भी हो लेकिन लुकड़ी सबकी एक ही होती है।

हिरण मँगे तिलचाली दे,
लाल गुड़े दी रोड़ी दे,
दिंदी जा, दुआँदी जा,
कोठे हथ पुआँदी जा,
हुड़ मट्ठक, मेरे हिरण बख्शी तक।

भाव है कि हमारा हिरण तिलचौली और गुड़ की रेबड़ी माँगता है। घर की मालकिन से दुआ करता है कि वह इसी प्रकार बाँटती रहे। घर-घर से दाना, पैसे और तिलचौली लेकर बड़ी रात बाद लड़के कहीं वावली के निकट अपना डेरा जमा लेते हैं। रात भर गाते बजाते जगराता करते हैं। इस रात जगह-जगह आग जला कर लड़के गाते बजाते देखे जा सकते हैं। सुबह सवेरे लड़के ठण्डे पानी से स्नान करके अपने-अपने घर जाते हैं।

बड़े तड़के लड़कियों की टोलियाँ राजड़े गाने निकल पड़ती है। घर-घर जाकर तिलचौली माँगती हैं।

तिलचौलिये - तिलचौलिये।
कौन सवेलाँ होईयाँ,
वों तिलचौलिये - तिलचौलिये।
भावों ते कुछड़ गिगा,
वो तिलचौलिये - तिलचौलिये।
किनी सुनारें घड़ियाँ,
वो तिलचौलिये - तिलचौलिये। गिगे दे पैर कड़ियां, वो तिलचौलिये
घड़ने वाला हीरा
वो, तिल चौलिये - तिलचौलिये।

इस लुकड़ी में भाभी की गोदी में पुत्र खेलने की कामना करती हैं। इसी प्रकार एक अन्य गीत में चावल और माह माँगती है। मालकिन की प्रशंसा में कहती हैं, कि पुत्र उसके ठाकुर हैं और बेटियाँ रानियाँ हैं।

राजड़यो - राजड़यो,
राज दुआरें आईयाँ मैया।
कोठे ऊपर धमकदा-धमकदा,
मैं बुज्झिया कोई चोर है।
चोर नहीं प्रहरी-प्रहरी,
लाड़िये तेरा वीर मैया।
चोलाँ माह रेड़दिये-रेड़दिये,
ऊपर पायाँ शकर मैया।
धीयाँ तेरियाँ राणियाँ राणियाँ
पुत्रा तेरे ठाकुर मैया।

लड़कियाँ सूरज निकलने पर घर वापस आ जाती हैं। बड़े सवेरे हर घर में लोहड़ी पूजन किया जाता है। लोहड़ी की संक्रांति को हर नर, नारी, बाल वृद्ध स्नान कर दान, पुण्य करते हैं। इस रोज हर घर में खिचड़ी बनाई जाती है। यह पर्व दान-पुण्य का एक अनोखा पर्व है। इस पर्व पर वर्षा होने का भी बड़ा महात्म्य है।

# हिमाचली संस्कृति में मोर

**रामलाल पाठक**
**गांव चिड़की, पत्रालय जुखाला, बिलासपुर**

जेठ और आषाढ़ की कड़कती धूप से जब सृष्टि के समस्त प्राणी व्याकुल हो जाते हैं, तो प्रकृति उसका पश्चाताप करती है छम-छम बरसते सावन के रूप में। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है, आकाश में काले-काले बादल छाए रहते हैं। धरती और अम्बर के बीच में एक अजीब सा वातावरण बन जाता है। विभिन्न प्रकार के पक्षी सवेरे तड़के से अपना-अपना राग आलापने लगते हैं। अमराइयों से कोयल की मधुर आवाज कानों में मिश्री सी घोल देती है। सावन के इस मास में सभी प्राणियों में मादकता आ जाती है। गांव के पीपल के पेड़ पर नवयौवनायें पीघा (झूला) डालती है और लम्बे झुलारों के साथ सावन गीत भी गाती है और गाते-गातें उसकी आंखों से बरबस आंसू भी टपकने लगते हैं। क्योंकि आकाश में छाए काले बादलों की घटायें देखकर प्रेमिका अपने प्रियत्तम की याद में व्याकुल हो जाती है। सावन का महीना जितना मदमस्त है उतना ही वियोग से भरा हुआ होता है। काले-काले बादलों की घटाओं को देखकर मोर अपनी सतरंगी पंख निकाल कर नृत्य करने लगता है। मोर का धार्मिक दृष्टि में भी अपना अलग ही महत्व है।

## धार्मिक दृष्टि में मोर

मोर अत्यन्त सुन्दर पक्षी है। इस पक्षी के समान सुंदर पक्षी संसार में कोई दूसरा पक्षी नहीं है। मोर क्यों इतना सुंदर है? इस संबंध में एक लोक धारणा है कि आदि काल में मोर काले रंग का था। जब देवता और राक्षसों की लड़ाई हुआ करती थी। देवताओं के पास बौद्धिक शक्ति थी जबकि राक्षसों के पास शारीरिक शक्ति थी। वे शारीरिक शक्ति से देवताओं को डराया करते थे। एक बार देवराज इन्द्र की अध्यक्षता में देवगणों की एक बैठक हो रही थी कि इतने में वहां एक महाबली राक्षस आ गया। राक्षस से बचने के लिए देवताओं ने विभिन्न पक्षियों के रूप धारण किए। देवराज इन्द्र ने मोर का रूप धारण किया। उस समय मोर का रंग काला बताया जाता है। देवराज इन्द्र ने मोर पक्षी के रूप में अपनी जान बचाई तो उन्होंने मोर को अति सुंदर होने का वरदान दिया।

मोर का वर्णन वेद-पुराणों में भी मिलता है। मोर भगवान श्री कृष्ण का अति प्रिय पक्षी माना गया है। इसलिए मोर पंख उनके मुकट का श्रृंगार बना। इस पक्षी को सिद्ध बाबा बालक नाथ का वाहन भी माना गया है। मोर की आकृतिया लकड़ी पर बनाकर कन्या की शादी के समय वेदी में भी लगाई जाती है। वेदी के चारों ओर मोर की आकृतियां लगाई जाती है।

## मोर से संबंधित लोक धारणायें :

मोर जितना सुंदर पक्षी माना जाता है उतना ही भोंला-भाला भी है। कहा जाता है कि 'सराईटी' नामक चिड़िया ने मोर को अपना धर्म का भाई बनाया और इससे छल कर दिया। सराईटी काले रंग की थी। एक बार वह मोर के पास गई और उससे कहा कि मैं शादी करना चाहती हूं परंतु मेरा रंग ठीक नहीं है। कलूटी समझ कर कोई भी मुझे अपनाने के लिए तैयार नहीं होता। यदि तुम अपनी चोंच और पंजे मुझे उधार दे दो, तो अपना घर बसाने के बाद उन्हें वापिस कर दूंगी।

मोर ने चोच ओर पंजे उसे दे दिए और उसके स्वयं ले लिए। सराईटी चिड़िया मोर से यह मुराद पाकर जंगल से भाग कर गांव की ओर आ गई और वापिस जंगल की ओर न गई। घने-घने बादलो की घटाओं का सौन्दर्य जब मोर देखता है तो उसकी तुलना वह अपनी चोंच और पंजों से करता है। जब वह मद्‌मस्त होकर नृत्य करने लगता है तो उसे अपने कुरूप पैर दिखाई दे जाते हैं। उसकी आंखों से आंसू टपकने लगते हैं। मोर नृत्य करने लगता है तो उसके साथ मोरनियां (मोर मादा) भी खड़ी रहती हैं और उसके टपकते आंसू पी जाती है जिससे वह गर्भवती होती हैं। कहा जाता है कि मोर मोरनी से सम्भोग नहीं करता। यह ब्रह्‌मचारी पक्षी है।

## मोर पंख

अनेक महर्षियों ने मोर पंख से वेद पुराणों की रचना की। क्योंकि मोर पंख को आदिकाल से ही लेखनी के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। भक्ति काल में अनेक सन्तों ने मोर पंख से कई रचनाएं रची हैं। मोर पंख को झाड़ू आकार में बांध कर मंदिरों के लिए 'चौर मुठा' बनाया जाता है जो देवताओं के लिए झुलाया जाता है। कई लोग मोर पंख को अपनी टोपी या पगड़ी पर लगाते हैं। इन पंखों को घर की सजावट के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

## धार्मिक लोक गीतों में मोर

मोर से संबंधित अनेक लोक गीत प्रचलित हैं जिसमें विशेष रूप से श्रीकृष्ण तथा सिद्ध बाबा बालक नाथ का नाम आता है।

**मोर मुकट रंग है काला हुण आ गया बंसरी वाला।।**

यह भक्ति गीत भगवान श्री कृष्ण को सतसंग के लिए आमंत्रित करता है। इस गीत में श्री कृष्ण के मोर मुकुट और सांवले रंग का वर्णन किया गया है। श्री कृष्ण को इस गीत में मुरली मनोहर बताया गया है। कांगड़ा के 'भ्यागड़ा' गीत में मोर का रंग काला होने का वर्णन है। क्योंकि पहले मोर काले रंग का माना गया है।

**कालेया मोरा तेरी जात बुरी तैं मेरी निन्द्र गवाई हो**<br>**आगणें तां खड़े मेरी तुलसी ठाकुर मैं तो रही पापण सोई।**

नायिका पहले तो काले रंग के मोर को दुत्कारती है जिससे उसकी निद्रा में विघ्न पड़ा। परंतु जब वह जागता है तो हैरान हो जाती है क्योंकि उसके आंगन में तुलसी और ठाकुर खड़े हुए हैं। वह अपने को पापिन कहती है। जिसके आंगन में भगवान खड़े हो और वह सोई हो तो उससे पापिन और कौन हो सकती है। सिद्ध बाबा बालक नाथ के भक्ति गीत में भी मोर का वर्णन मिलता है।

**सिद्ध बाबा बालक नाथ उड़ गए मोर बनके।**

क्योंकि सिद्ध बाबा बालक नाथ मोर की सवारी करते हैं। जब वे इधर-उधर जाते हैं तो उन्हें मोर अपनी पीठ पर बिठा कर वहां ले जाता है जहां बाबा जी चाहते हैं। भगवान राम को लेकर गाए जाने वाले इस गीत में लक्ष्मण द्वारा दो मोर पालने का वर्णन मिलता है।

**राम ने पालेया तेरा हीरामन तोता लक्ष्मणे पाले दो मोर।**<br>**कोयलिया काली कोयलिया महाराज सीता ने पाली कोयलिया।**

श्री राम ने हीरामन तोता पाल रखा था। लक्ष्मण ने दो मोर और सीता ने काली कोयल पाल रखी है।

## हिमाचल के प्रकृति-सौन्दर्य गीतों में मोर

हिमाचल प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रदेश है। मोर जैसे सुंदर पक्षी इस प्रदेश के सौंदर्य में चार चांद लगाते हैं। इसलिए यहां के लोकगीतों में भी मोर का वर्णन मिलता है :—

**पहाड़ा दा नजारा संजो प्यारा लगदा पपीहा बोले, मोर बोले जंगल चकोर बोले**
**गद्दिए जो गद्दणीरा बालू प्यारा लगदा।**

यह गद्दी जनपद का गीत है। इस गीत में स्पष्ट किया है कि हिमाचल का नजारा बहुत ही मनमोहक लगता है। जंगल में पपीहा, मोर और चकोर बोल रहा है। लेकिन गद्दी फिर भी गद्दन का मुंह देखता रह जाता है। उसे तो केवल गद्दन की नथ ही प्यारी लगती है। गद्दी गद्दन को कहता है कि चम्बा के चुगान में मोर नाचने को तैयार है। उसने अपने पंख फैला दिए है। यानी चुगान में वातावरण मद्मस्त है जो इस गीत से स्पष्ट होता है।

**चम्बे रे चुगाना गद्दणी मोर पायला पान्दे।**
**सैली-सैली धारा जे तीतर सीटियां बजान्दे।।**

चम्बा चुगान में मोर ने नाचने के लिए पायल डाल ली हैं। हरी-भरी धाराओं में चकोर ऐसे बोल रहे हैं जैसे घने-घने जंगल में से कोई सीटी बजा रहा है।

## संस्कार गीतों में मोर

विवाह संस्कार गीतों में भी मोर का वर्णन मिलता है। कन्या पक्ष की ओर से गाए जाने वाला गीत जिसे 'सुहाग' कहा जाता है। इस गीत में पिता अपनी बेटी का रिश्ता दूर करता है। बेटी माँ की लाडली है। विवाह के समय महिलाएं ये गीत गाती हैं।

**बागे बोले कुंजडी वन में बोले दो मोर**
**बापू जी मोरा ते मांगू मैं चूरदी**
**अम्मा दी मैं लाडली बापुए दीती दूर**

बाग में कोयल बोल रही है और वन में दो मोर बोल रहे हैं। इस गीत में कन्या अपने पिता, मामा, चाचा, ताया तथा भाई द्वारा दूर ब्याह देने का दोषारोपण करती है और इसे वह दुर्भाग्य मानती है। वह कन्या अपनी मां, चाची ताई तथा मामी की लाड़ली है। वह बेबस है और मोर की तरह छटपटाती है।

लड़की की शादी हो जाती है। वह मायके में आती है। मेहमान बनकर आती है वह विवाह के पश्चात् कमजोर हो जाती है। माता पूछती है यह कैसे हुआ?

**अम्मा जे पूछदी सुन धिए मेरिए**
**मुईए दूबली तू कियां करी होई**

तो यह सुनकर लड़की कहती है।

**आधी-आधी राती मोर जे बोलया**
**अम्मा जी इनी मोरे नीन्द्र गवाई हो**

लड़की अपने दुबली होने का प्रमाण देती है तो मां कहती है :

**चकी के बन्दूका भेजी के शिकारी**
**धिए बोलो मोर मारी मुकाणे**

बेटी कहती है कि आधी रात को सुदूर जंगल में मोर बोलता है। उस मोर के बोलने से मेरी नींद भंग हो जाती है। फिर सोच में पड़ जाती हूँ और सोच-सोच कर में दुबली हो गई हूँ। मां कहती है कि बन्दूकधारी शिकारी भेजूंगी। वे मोर खत्म करने है जो तेरी नींद में विघ्न डालते हैं।

## लोक पहरावे में मोर से सम्बन्धित गीत

हिमाचल के लोक पहरावे में भी मोर से संबंधित गीतों का वर्णन मिलता है। जिसमें से अधिकतर गीत चम्बा क्षेत्र से संबंध रखते हैं। चम्बा में मिंजर का मेला लगता है। गद्दन गद्दी के साथ-साथ जाने के लिए तैयार होती है। वह

गद्दी के पहरावे का वर्णन इस प्रकार करती है :–

**काली तेरी कलगी ओह मौरा मोरा केरा साफा ओ**
**मिंजरा रे मेले ओह मौरा सौगी-सौगी जाणाओ**

गद्दी ने सिर पर काले रंग की पगड़ी बांध रखी है। काली पगड़ी पर एक ओर काली कलगी है तथा (दूसरी ओर) आगे की ओर मोर पंख शोभायमान है। गद्दन भी तैयार हो जाती है अपने पारम्पारिक परिधान में दोनों साथ-साथ चम्बे के चुगान की ओर चल पड़ते हैं जहां मिंजर का मेला होता है। चम्बा के एक ओर गीत में भी मोर का वर्णन मिलता है।

**लाल तेरा साफा ओ दरजिया**
**मोरा केरी कलगी ओ**

गद्दी लोग रंग बिरंगे कपड़े पहनते हैं। पहले काली पगड़ी का वर्णन आता है तो बाद में लाल पगड़ी का वर्णन आता है। इस गीत में दरजी के लाल साफे पर कलगी मोर पंख की है। लाल पगड़ी पर मोर पंख बहुत ही सुंदर लगता है।

## पहिया लोक गीत में मोर

दीवाली से १५ दिन पूर्व बिलासपुर क्षेत्र में 'पहिया गीत' गाया जाता है। इस गीत को लड़कियां ही गाया करती हैं। गांव की पांच सात किशोरियों की एक टोली घर जाकर 'पहिया' नचाती है। पहिए में एक छोटे आकार का घड़ा जिसके चारों ओर छेद किए जाते हैं। इसके अन्दर तेल का भरा दीपक जलाया जाता है। एक किशोरी उसे अपने सिर पर नचाती है तो दूसरी इस गीत को गाती है। इसमें भी मोर का वर्णन मिलता है :

**चटकिए नी मटकिए रंगीली लाणी डोर।**
**सावन आया गोरिये वन चुगे मोर।।**

सिर और मटके के बीच में बिनुआ है इसकी रंगीन डोर है। जिसमें कई रंग है। फिर नायिका गोरी को कहती है कि सावन आ गया है और वन में मोर चुग रहे हैं। इसी तरह सात दिन तक आस-पास के गांव में घर-घर जाकर पहिया नाचती है। गांव वाले उन्हें कुछ-न-कुछ दान देते हैं। रुपये पैसे के अतिरिक्त उन्हें आनाज भी दिया जाता है।

## प्रेम गीतों में मोर

प्रेम गीत भी मोर के वर्णन से अछूते नहीं है। निम्न गीत में प्रेमी अपनी प्रेमिका पर कुछ ऐसे आरोप लगाया करता है।

**जंगल वासी ओह किन्हें डवाया मेरा मोर उड़ी-उड़ी मोरा तू डालेया पर बैठी जा**
**पतेया जे लुखाई रखदी छुपाई रखदी ओह किन्हें डवाया मेरा मोर**

जंगल का वासी मोर बहुत सुंदर पक्षी है। प्रेमिका प्रेमी को खींजाने के लिए मोर को उड़ा देती है। और तब तक उड़ाती रहती है जब तक वह पेड़ के पत्तों में नहीं छुप जाता है। इस तरह की शरारतों से उन्हें आपस में मिलने का मौका मिलता है। गंगी के गीत भी मोर वर्णन से वंचित नहीं है। ऊंची धार पर मोर बैठा है वह बोल रहा है ओर नायक के मन से यह गीत स्वरलहरियों में तैरने लगता है।

**पार रिड़िया जे मोर बोलदे किया आऊणा तेरे गांवा जे**
**तेरे टब्बरा रे चोर बोलदे**

नायक-नायिका से कहता है कि मैं तुमसे नहीं मिल सकता और न ही तुम्हारे गांव आ सकता हूं। क्योंकि तुम्हारे परिवार वाले मुझे चोर कहते हैं। इसी तरह मोर का हिमाचल की लोक-संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोक गीतों के अतिरिक्त लोक काव्य में भी इसका विशेष स्थान है। यह लोक साहित्य में प्रेरणा का स्रोत है। जितना सुंदर है यह पक्षी उतना ही पूजनीय भी है। मोर नृत्य खुशहाली का प्रतीक है।

# विशु-पुड़ग मेला

नरेन्द्र 'अरुण'
राजकीय महाविद्यालय, सरस्वतीनगर,
जुब्बल, शिमला (हि.प्र.)

हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने से पूर्व कोटखाई में सूर्यवंशी परिहार राणाओं की शाश्वत परंपरा रही। कोटखाई रियासत का क्षेत्र बलसन, कुम्हारसैन, खनेटी, दशकोटी तथा जुब्बल रियासतों के मध्य में पड़ता था। कोटखाई जनपद के लोग धर्म परायण और भोले भाले हैं। यहां के लोगों की धार्मिक आस्था और धर्म के प्रति अटल विश्वास देखते ही बनता है। यहां के लोग तीज त्योहारों, और मेलों को पुरातन सांस्कृतिक परंपराओं के आधार पर ही मनाते हैं। कोटखाई जनपद के घयाल़ परगने में देवता बोयन्द्रा चेहाड़, गजदार छबीसी में नद्रहाड़ी, पुड़ग छबीसी क्षेत्र में महादेओ, नेहरा क्षेत्र में डोम, चैथला में नागदेवता, दलसार में नारसिंह, राणा कोटखाई के वंशजों की कुलजा माता क्यारी में तथा तुलाधार के उत्तुंग शिखर पर लुन्ना काली देवी आराध्य है।

पुड़ग जहां कोटखाई राणे का विशु लगता है, शिमला से लगभग ७५ कि.मी. की दूरी पर बस से जुड़ा हुआ है। पुड़ग में महादेव का बहुत पुराना मंदिर है। इसी मंदिर के प्रागण में पुड़ग मेला अथवा कोटखाई के राणा के विशु का मेला लगता है। इस मेले का आयोजन अब केवल ९, १०, और ११ बैसाख को होता है। हिमाचल प्रदेश में आने से पूर्व जनोक्ति के आधार पर यह मेला बैसाख संक्रांत से लगभग मासांत तक मनाया जाता था परंतु बदले हुए प्रगति के प्रवेश में अब यह मेला केवल तीन दिन ही आयोजित होता है।

पुड़ग गांव में मंदिर के प्रांगण से चारों ओर फैली हुई हरित रमणीय घाटियों के दृश्य देखने को मिलते हैं, कोटखाई, बलसन, कुम्हार-सेन, खड़ा पत्थर के मन-भावन दृश्य देखने को मिलते हैं। यहां से कोटखाई क्षेत्र के पांदली, पुगंरीश, गहरा और कोटखाई दरबार के राजमहल, कुम्हारसेन के घूण्डा, कोठी और खोड्डू के दृश्य तथा बलसन के कोकू, महासू, गुम्मा तथा बांगड़ा के क्षेत्र फैले हुए दिखाई देते हैं। खोड्डू का दृश्य अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है। यहां पर चंगाओटी तथा गिरी गंगा नदियों का संगम है तथा देवता घूण्डा नाग अपनी केदारनाथ यात्रा के समय यहां पड़ाव डालते हैं, स्नान करते हैं फिर यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं। खोड्डू का यह पावन स्थल निकट भविष्य में प्रगति नगर के प्रकाश को बिखेरता हुआ दिखाई देगा।

पुड़ग मेला अस्तित्व में कैसे आया इसके पीछे एक लोक कथा सुनने को मिलती है। दन्त कथा के आधार पर कहते हैं कि पुड़ग के महादेव का जन्म पुणागी माता के गर्भ से पुड़ग स्थित जमूणी नामक तालाब/चश्मा में पानी के भीतर से हुआ था। स्वीकार किया जाता है कि महादेव की उत्पत्ति से पूर्व उस तालाब के पास पानी के चश्में से धूप-दीप और पूजा की भीनी-भीनी सुगन्ध आती थी। पूजा सामग्री की यह सुगन्ध निकटवर्ती क्षेत्र में फैलनी शुरू हो गई। विश्वास किया जाता है कि पुड़ग-निवासी किसी कपरेट परिवार के सदस्य को महादेव ने स्वप्न में दर्शन दिए और अपने जन्म की बात कही। महादेव ने कपरेट परिवार के उस सदस्य को अपनी स्थापना और मंदिर बनवाने का आदेश भी दिया। अमुक सदस्य ने तद्‌युगीन ब्राइमणों और विद्वान पण्डितों से स्वप्न के विषय में विचार विमर्श किया। अमिट आस्था और अटल विश्वासी पंडित विद्वानों ने देव-वाक्य को सच्च मान कर उसे महादेव को आदर सहित स्थापना करने की बात कही तथा पुड़ग वासियों ने देवी आगमन को सहर्ष स्वीकारा। पुड़गवासियों सहित कपरेट परिवार का अमुक सदस्य जिसे दिव्य स्वप्न हुआ था जमूणी चश्में के पास गए और उन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि देवी स्वप्न सत्य हो कर प्रत्यक्ष हो

गया। जमूणी तालाब के चश्में से महादेव की मूर्ति प्रकट हुई। पुड़गवासी सहर्ष आदर सहित उसे लाए और विधिवत स्थापना की। जनविश्वास है कि महादेव का यह मंदिर लगभग ५०० वर्ष पुराना है। लगभग उसी समय से यहां पर मेले का आयोजन भी होता आया है। कालांन्तर में सर्वप्रथम कोटखाई के राणों ने पुड़ग महादेव को मान्यता दी और कोटखाई के राणा नारायण सिह जी ने देवी देवताओं की मान्यता एवं पूजा संबंधी विधानों को भी स्थापित किया। भूतपूर्व कोटखाई राणा नरेन्द्र सिंह परिवार के कथनानुसार इन तथ्यों की पुष्टि कोटखाई दरबार के रिकार्ड ताम्र-पत्र की बहियों से होती थी परंतु रियासतों के विलीन के समय शिमला के पोलिटिक्ल एजेन्ट कोटखाई से संबद्ध ताम्र-बहियों को अपने साथ ही ले गए।

महादेव के सम्मान में लगने वाला यह मेला दन्त कथा के आधार पर कुम्हार-सेन वालों की प्रतिद्वंद्विता के कारण ही आरंभ हुआ था। वास्तव में पुड़ग क्षेत्र राणा कोटखाई तथा घूण्डा क्षेत्र राणा कुम्हारसेन की रियासतों के भाग थे। प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण दोनों रियासतों की प्रजा में राग द्वेष और ईर्ष्या के कारण छोटी-छोटी बातों को ले कर तनाव रहता था और झगड़े हुआ करते थे। पुड़ग मेले के अस्तित्व में आने से पूर्व घूण्डा क्षेत्र में मेले का आयोजन होता था परंतु घूण्डा क्षेत्र के जनवासी परस्पर वैमनस्य के कारण इन पुड़ग वालों को मेले में प्रवेश नहीं पाने देते थें। इतना ही नहीं पुड़ग वासियों को कायर कह कर मेले में आने के लिए ललकारा जाता था और इन चुनौतियों को स्वीकारते हुए पुड़ग के लोग मेले में जाते और जबरन लड़ाईयां मोल लेते थे। बहुत समय तक इस प्रकार के परस्पर लड़ाई-झगड़े चलते रहे। बाद में घूण्डा ग्रामवासियों और कोटखाई जनपद के लोगों ने प्रतिवर्ष मेले में होने वाले झगड़ों के निबटारे के लिए सांझे प्रयत्न किए और बाद में एक समझौते के अनुरूप पुड़ग वालों ने राणा कोटखाई के परामर्श से अलग मेले के आयोजन का निर्णय लिया। जन विश्वास इस तथ्य की पुष्टि करता है कि पुड़ग मेले का श्रीगणेश 'राणेके विशु' के नाम से पहले-पहल प्रारम्भ हुआ जो आज तक भी पुरातन परंपरा के अनुसार मनाया जाता है। समझौता होने के बाद घूण्डा नाग देवता को भी पुड़ग मेले में मुख्यातिथि की मान्यता मिली।

राणाओं के समय में पुड़ग मेले का आयोजन पूरे बैसाख महीने तक चलता था परंतु अब यह मेला सिमट कर केवल तीन दिन का रह गया है। अब इस मेले का आयोजन ९, १०, और ११ बैसाख को ही होता है। बैसाख संक्रांत के बाद पांच गते को पुड़ग-महादेव बाहिर निकलते हैं और उनकी उपस्थिति में भूमि पूजन जिसे यहां की लोक भाषा में 'जुबड़ी ज्वालणा' कहते हैं संपन्न होता है। इस रस्म का विशेष रूप से यह महत्त्व है कि आने वाले मेले के लिए भूमि को पवित्र कर के पृथ्वी माता को पूजा जाता है। जुबड़ी-ज्वालने की इस सांस्कृतिक रस्म के बाद मेले की तैयारियां शुरु हो जाती हैं और विशेषकर पुड़ग-देवता अपने मुख्य अतिथियों घूण्डा-नाग तथा राणा कोटखाई के स्वागत के लिए अपने आपको पूरी तरह से तैयार करते हैं।

निर्दिष्ट तिथियों पर मेले का आनन्द लेने और देवताओं का पावन आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आसपास के सभी जनपदों के लोग पहले से ही पुड़ग-देवता के प्रांगण में जमा होने लगते हैं। पुड़ग मेले का पहला दिन 'कोटखाई राणे का विशु, कहलाता है। मेले के पहले दिन अतिथि के रूप में राणा कोटखाई की उपस्थिति अनिवार्य होती है। पुड़ग-गांव के ठीक सामने घूण्डा गांव से जब पुड़ग-मेले के मुख्य अतिथि घूण्डा नाग की रथ-यात्रा प्रारंभ होती है तो कोटखाई, कुम्हारसैन, बलसन की घाटियां देवताओं के वाद्ययंत्रों की धुनों से गूँजने और थिरकने लगती हैं। विशेष प्रकार की मौज उस समय मन में कुलाचे भरने लगती है।

घूण्डा नाग सज-धज कर पालकी में बैठकर अपने कारदारों, पुजारी, माली/ गुरु तथा प्रजा के साथ हर्षो उल्लास की मुद्रा में पुड़ग की ओर झूमता हुआ चल पड़ता है। जैसे ही घूण्डो नाग पुड़ाग-बांबड़ी के समीप पहुंचता है उनके आतिथ्य स्वागत के लिए पुड़ग महादेव अपनी चिन्ह छड़ी और चवंर कारदारों के पास भेजकर घूंडा नाग को आदर सहित लाने का आदेश देता है। पुड़ग-देवता स्वयं जो पहले से ही प्रांगण में लोगों के दर्शनार्थ बैठे होते हैं, घूण्डा नाग के आगे की प्रतीक्षा वहीं प्रांगण में करते हैं। पुड़ग बावड़ी पर घूण्डा नाग की आगवानी पुड़ग महादेव की ओर से होती है और राणा कोटखाई द्वारा घूण्डा नाग के अतिथि सत्कार में समर्पित की हुई बकरे की बली भी इसी समय चढ़ाई जाती है। घूण्डा नाग इस समय पुड़ग महादेव और राणा कोटखाई के अतिथि को सहर्ष स्वीकारता हुआ प्रसन्न मुद्रा में झूमता-नाचता पुड़ग देवता

के प्रांगण में पहुंच कर महादेव पुड़ग को आदर सहित प्रणाम करता है। दोनों देवताओं के पावन मिलन का यह दृश्य तो देखते ही बनाता है। इस समय दोनों देवताओं के बजन्तरी उत्साहित होकर ढोलढमाकों रणभेरियों काहलों, करनालों की ध्वनि से गगन चुम्बी पर्वत मालाओं को तरंगित कर देते हैं। श्रद्धालुओं का अपार जनसमूह मारे प्रसन्नता से झूम उठता है। इस मिलन के उपरांत घूण्डा नाग अपने ईष्ट मित्र पुड़ग महादेव के समक्ष मंगल-मिलन की सद्भावना को लेकर मंदिर के खुले प्रांगण में नृत्य करता है और लगभग तीन-चार हजार दर्शकों की भीड़ इस मनमोहक नृत्य का आनंद लेती है।

घूण्डा नाग के मेले में आगमन के उपरांत कोटखाई के राणों का भी पुड़ग महादेव की ओर से ठीक इसी प्रक्रिया में स्वागत किया जाता है जो घूण्डा नाग के आतिथ्य सत्कार के लिए निर्धारित होती है। मंदिर के नीचे, पुड़ग-गांव के एक छोर पर निर्दिष्ट स्थान पर राणा कोटखाई के स्वागत के लिए पुड़ग देवता का चिन्ह-छड़ी और चवंर वाद्य यंत्रों के साथ आते हैं। राणा कोटखाई के वहां पहुंचते ही देवता के वाद्य-यंत्रों के निनाद से उनका स्वागत होता है और स्वागतोपरांत राणा कोट खाई देवता के उन बजन्तरियों को उनका निर्धारित लाग-जोग देते हैं। तदुपरांत, पुजारी, भंडारी, गुरु और अन्य कारदार राणा कोट खाई को बाजे-गाजे के साथ देवता के प्रांगण में लाते हैं। यहां पर पधारते ही सर्वप्रथम पुड़ग-देवता को मत्था टेक कर आशीर्वाद प्राप्त करते है तंदुपरांत वे घूण्डा नाग का अभिवादन करते हैं। घूण्डा नाग नृत्य करते करते राणा कोटखाई के पास आता है और बड़े प्यार से इन दोनों ही अतिथियों का मिलन देखने को मिलता है। मिलन के पश्चात् राणा कोटखाई पुड़ग महादेव की दाहिनी ओर निर्दिष्ट आसन ग्रहण करते हैं और घूण्डा नाग देवता नृत्य-मुद्रा में मग्न रहता है। श्रद्धालु बारी-बारी से घूण्डा नाग देवता की पालकी को सहर्ष उस प्रांगण में नचाते हैं और इस बीच दोनों देवताओं को बरों (भेंट) प्रस्तुत करने का न खत्म होने वाला सिलसिला भी निरंतर चलता रहता है। घूण्डा नाग के मनमोहक नृत्य का भरपूर आनन्द तो उस समय आता है जब साठोत्तरी माली/गुरु दोनों देवताओं के घूण्डा नाग की पालकी को कन्धो पर उठाकर बजन्तरियों की धुन पर लय ताल मिलाते हुए मस्ती के आलम में नाचना शुरु करते हैं। उनका यह नृत्य भले ही क्षणिक होता है, पर होता है बड़ा ही आकर्षक। लगभग सन्ध्या होने तक घूण्डा नाग का नृत्य चलता रहता है।

सान्ध्य बेला होने पर, संध्या पूजा के लिए दोनों देवताओं को प्रांगण से नीचे 'पौल़ देवता' के भण्डारे वाले प्रांगण में लाया जाता है। इस समय सब से आगे दोनों देवताओं के बजन्तरी फिर राणा कोट खाई और उसके बाद घूण्डा नाग और पुड़ग महादेव। जन विश्वास के आधार पर राणा कोटखाई को देवताओं की तुलना में अधिक मान दिया जाता है और यही कारण है कि देवताओं की पालकी से आगे राणा कोटखाई की पालकी चलती है। राजाओं के शासन काल में कोटखाई के राणा भी सजीधजी पालकी में अपने बाजे-गाजे के साथ मेले में आते थे परंतु हिमाचल प्रदेश बन जाने के पश्चात् वर्तमान राणा कोटखाई मेले में अवश्य आते हैं, घूण्डा नाग के लिए बली भी देते हैं परंतु उनके साथ आने वालों की संख्या अब कम हो गई। राणा कोटखाई के साथ उनके नाते-पोती/रिश्तेदार या प्रजा जिन्हें 'बाजारू' कहा जाता है आते हैं। भले ही राणाओं की सत्ता वर्तमान प्रजातन्त्र में छिन्न चुकी है परंतु प्रजा के बीच इनका मान-सम्मान आज भी वैसा का वैसा ही बना हुआ है, उसमें लेशमात्र भी अंतर नहीं। यहां की प्रजा का तो आज भी विश्वास बना हुआ है। पुरानी कहावत आज भी कोटखाई जनपद में सार्थक है। यथा :—

'देओ बसा राजो दा—<br>
राजा नि बसदा देओवा दो।'

अर्थात् देवताओं का बास राजाओं से ही हैं राजे देवताओं में नहीं बसते। स्पष्ट है कि कोटखाई जनपद में राणाओं को देवताओं की तुलना में आज भी विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है।

पुड़ग मंदिर के भंडार वाले प्रांगण (पौल़) में एक ऊंचे पवित्र स्थल में घूण्डा-नाग तथा पुड़ग महादेव की पालकियां रखी जाती हैं और उन के बाएं स्थान पर थोड़ा हट कर राणा कोटखाई को भी देवताओं की श्रेणी में बिठाया जाता है। शेष सभी श्रद्धालु 'पौल़' के निचले खुले प्रांगण में पूजा का दृश्य देखने अपने प्रश्नों का हल खोजने तथा पूजा का प्रसाद ग्रहण करने के लिए प्रतीक्षा करते हैं। दोनों देवताओं के बजन्तरी भी नीचे से ही पूजा के समय 'बेल' बजाते हैं।

पूजा के समय बजाई जाने वाली विशेष ध्वनियों को 'बेल' कहते हैं। यह यहां की लोक भाषा का आंचलिक शब्द है।

संध्या पूजा के समय अपने-अपने देवताओं के पास उनके पुजारी, गुरु एवं भण्डारी एकत्रित हो जाते हैं। पूजा के समय चढ़ाया जाने वाला प्रसाद भी बड़ी सी कड़ाई में बनकर आ जाता है। निर्धारित समय पर दोनों पुजारी विधिवत् मंत्रोच्चारण से दोनों देवताओं की पूजा आरंभ करते हैं। इस समय दोनों पुजारियों के मंत्रोच्चारण यहां की लोक भाषा में ही होते हैं। पूजा शुरु होते ही घंटी शंख ध्वनि और नगाड़ों की गुंजार पुड़ग के माहौल को खुशगवार बना देती है। इस समय दोनों पुजारी समर्पित भावना से पूजा में लीन दिखाई देते हैं। पूजा के धूप की महक पौल में बैठे श्रद्धालुओं को भी पूजा में समेट लेती है।

पूजा समाप्त होने के पश्चात पौल में एकत्र लोग शंका समाधान के लिए अपने-अपने प्रश्न लेकर दोनों देवताओं के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। इस समय दोनों देवताओं के गुरु देवताओं के समीप आसन ग्रहण करते हैं। अपनी-अपनी शिखाएं खोलते हैं और देवता के पवित्र जल का आचमन करके अपने को शुद्ध कर लेने के पश्चात् अपने भीतर देवता का आहवान हाथ में घंटी ठनका कर करते हैं। पल भर में देवता की छाया मुखरित हो जाती है और शुरु हो जाता है प्रश्नोत्तरी का एक लम्बा सिलसिला। अपने-अपने प्रश्नों का पिटारा लिए लोग आते हैं, हाथ जोड़कर विनम्र भाव से अपने दु:खों का निवारण करते हैं, शंकाओं का समाधान खोजते हैं। प्रश्नोत्तर कड़ी के उपरांत सभी श्रद्धालुओं में प्रसाद वितरित किया जाता है। प्रसाद वितरण के पश्चात् दोनों देवताओं को पालकी में बिठा कर रात्रि विश्राम के लिए मंदिर के भीतर ले जाया जाता है। सभी श्रद्धालु मंदिर तक देवताओं को आदर सहित छोड़ने आते हैं। पुड़ग महादेव के अतिथियों घूण्डा नाग और राणा कोटखाई के ठहरने का समुचित प्रबन्ध देवता की ओर से होता है। शेष मेले में पधारे हुए लोग अतिथि बन कर 'ढिल्ला' रिवाज के अनुसार एक-एक घरों में बट जाते हैं। इस प्रकार दूसरे गांव से आए हुए लोगों को ठहराने की व्यवस्था को 'ढिल्ला' रिवाज से पुरातन सांस्कृतिक परंपरा को आज तक निभाया जा रहा है।

मेले का दूसरा दिन 'ग्रहिणी-पूजन' का होता है। इस दिन अतिथि देवता पूर्ण विश्राम करते हैं और बाहिर मेले में नहीं निकलते। पुड़ग के महादेव के चिन्ह छड़ी और चंवर मेले में लाए जाते हैं और इन्हीं को देवता का साक्षी मान कर 'ग्रहिणी पूजन' प्रारम्भ होता है। ग्रहों के विधिवत् पूजन के पश्चात एक बार फिर अपने ग्रहों की शांति के निमित्त देवता के समक्ष प्रश्नोत्तर का सिलसिला दूसरे दिन शुरु हो जाता है। देवताओं से अपनी शंकाओं के उन्मूलन के लिए प्रश्नों के लिए वहीं पहले वाली प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रश्नों के साथ-साथ पुड़ग गांव में एक और दृश्य भी दूसरे दिन देखने को मिलता है। यह सिलसिला है मेले के दूसरे दिन प्रत्येक घर में जा कर 'हारों' को गाने का। अमुक हारों में कोटखाई जनपद की लोक गाथाओं को हरिजन लोग अपने-अपने वाद्ययन्त्र ले कर विशेषकर खंजरियों की थपक के साथ बड़े मनोरंजन ढंग से गाते-सुनाते हैं। इस प्रकार सुनाई जाने वाली हारों को गाने वाले 'जोली' नाम से जाने जाते हैं। जोलियों की अमुक टोली जिन-जिन वीर गाथाओं को सुनाती है उनमें सबसे पहले पुड़ग गांव के वीर प्रसु 'हिमाटो-हाल' की हार है। इसके विपरीत राणा राम सिंह जो शहीद हुए उनकी गाथा तथा सतियों में देवी क्रीड़ा की गाथा को हृदय-विदारक स्वरों में गाया जाता है। द्वार-द्वार पर जा कर गाने वाली इस टोली को गांव वाले रिवाज के अनुसार कुछ-न-कुछ तो देते ही हैं। 'जोली' गाने वालों की यह टोली राणा कोटखाई को भी जहां वे अतिथि रूप में विश्राम कर रहे होते हैं, उनके पूर्वजों की वीर गाथाओं को सुनाने जाती है। राणा कोटखाई जोली सुनने के उपरांत इन्हें इनका 'लाग जोग' प्रदान करता है।पुड़ग गांव के भीतर जहां लोग गाथाओं का स्वर गुंजार करने लगता है वहां दूसरी ओर पुड़ग मेले के प्रांगण में लोग सामूहिक लोक नृत्य की लोक लहरी में सांझ ढले तक डूबे रहते हैं। उनकी नृत्य माला दिन भर टूटती ही नहीं। उनके द्वारा गाए जाने वाले लोक गीत समस्त वातावरण को सुरीला बना देते हैं।

मेले का तीसरा और अंतिम दिन जुदाई का होता है। एक सम्मिलन जो ठीक दो दिन पहले वर्षोपरांत हुआ था आज एक वर्ष के लिए फिर बिछड़े जाने की घड़ियों को लेकर जुदाई की दस्तक देने लगता है। मेले का यह विछोह भी देखने वाला ही होता है। पुड़ग देवता की ओर से घूण्डा नाग और राणा कोटखाई को भावभीनी विदाई दी जाती है। पुड़ग-बावड़ी तक घूण्डा नाग को अलविदा कहने के लिए पुड़ग-देवता का चिन्ह छड़ी और चंवर आते हैं। जन विश्वास है कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी पीड़ाओं का समाधान न मिला हो तो वह घूण्डा नाग के मार्ग में लौटती बार 'भेखलटी' नामक

पवित्र झाड़ी डाल कर घूण्डा नाग का मार्ग रोक लेता है। मेखलटी के पड़ते ही नाग-देवता घूण्डा की पालकी रुक जाती है। लौटती बार घूण्डा नाग को इस प्रकार प्रतीकात्मक प्रकरण से रोकना या तो देवता के आगे विनम्र निवेदन का सूचक है या फिर देवता के लिए गम्भीर चुनौती जिसका समाधान देवता को करना ही होता है। हम उस 'मेखलटी' का कुछ भी अर्थ ग्रहण करें परंतु हमें स्वीकारना ही पड़ता है कि देवता दुखी प्राणी की आर्त वाणी सुनने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। पालकी रुकते ही घूण्डा नाग का गुर अमुक व्यक्ति की शंकाओं का उन्मूलन करता है। पुड़ग-बावड़ी से देवता महादेव के चिन्ह वापिस आ जाते हैं और घूण्डा-नाग अपने घर की ओर सहर्ष प्रस्थान करता है। घूण्डा नाग के चले जाने के बाद राणा कोटखाई को पुड़ग महादेव की ओर से विदाई दी जाती है। विदाई में देवता की ओर से मेंट स्वरूप में नकदी और रसद देने का प्रावधान होता है। राणा कोटखाई को भी उसी स्थान तक जहां उनका आती बार स्वागत हुआ था देवता पुड़ग महादेव के चिन्ह विदाई देने आते हैं और वापिस लौट जाते हैं।

कोटखाई राणे का विशु तीन दिन की चलह पहल के बाद समाप्त होता है। पुड़ग देवता के मंदिर की समूची व्यवस्था और मेले का कार्यभार मंदिर की एक कमेटी देखती है। पंडित हीरा नंद जी सचिव के नाते महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बातों ही बातों में इन्होंने बताया कि जब से नई कमेटी अस्तित्व में आई है तब से देवता के भण्डार में भारी पैसा है। कमेटी ने देवता के केदारनाथ जाने वाली यात्रा के लिए उगाहा जाने वाला देवता यात्रा कर लेना भी बंद कर दिया है जिससे कि यहां के लोगों को बहुत राहत मिली है। अब पुड़ग महादेव के पास दैवी कृपा से इतनी आय है कि कर उगाहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। समय समय पर मंदिर के जीर्णोद्धार का कार्य भी सम्पन्न होता रहता है।

बड़े सौभाग्यशाली हैं पुड़ग जैसे वे जनपद जहां आज भी देवी देवताओं का पूरा सम्मान है। इनके प्रति अमिट आस्था है और अटल विश्वास भी। नि:संदेह हमारे पुरातन देवी देवताओं के कारण ही हिमाचल प्रदेश की संस्कृति आज भी भारतीय संस्कृति में अपना सर्वोपरि महत्त्व रखती है। धन्य है हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक सम्पदा को अमरत्व प्रदान करनो वाले हिमाचली संरक्षक।

संगीत कार्यशाला में प्रशिक्षणार्थियों को सितारवादन के गुर सिखाते हुए प्रो०देबू चौधरी।

# जाहर-पीर गुग्गा

**पवन कुमार शर्मा**
**गांव व पत्रालय हलेड तह. जयसिंहपुर**
**ज़िला कांगड़ा, हि.प्र.**

हिमाचल प्रदेश ऋषियों-मुनियों की तपोभूमि है। यहाँ पर हर जगह कोई न कोई देवी-देवता का मंदिर स्थित होता है। कहीं माँ भवानी, कहीं पर शिव या शिव अंश के रूप में और कहीं पर विष्णु भगवान के मंदिर हैं। इन मंदिरों के साथ-साथ जाहरपीर जिन्हें शिव अंश माना जाता है। 'गुग्गा के मंदिर' भी शोभायमान हो रहे हैं। जाहर पीर गुग्गा के मंदिरों में से 'कडप्पे दा गुग्गा' जो कि ऊना जिला में रिपोहमिसरां से १०-१५ कि.मी. दूर स्थित है।

प्रायः लोगों में यह कथन सुनने को आता है कि इस देवता की आराधना करने से सर्पों के काटे हुए मनुष्य कुशल हो जाया करते हैं। जब भी कोई सर्पदंश की दुर्घटना हो जाती है तो रोगी को इस मंदिर में ले जाया जाता है; वहाँ पर रोगी को मंदिर का चेला धूप, पानी और भभूत देता है।

इन चीज़ों का सेवन और भूमि पर शयन करने से सैकड़ों लोगों को सर्पदंश रूपी मृत्यु के फन्दे से छुटकारा मिलता है, तभी तो लोगों की यह आस्था का प्रतीक है।

मंदिर में जाहरपीर गुग्गा, बहन गुगनी, वासुकि नाग आदि की मूर्तियाँ स्थापित है। प्रतिवर्ष जाहरपीर के हिमाचल में स्थित मंदिरों में रक्षा बन्धन वाले दिन से (उस दिन एकम तिथि) होती है, भजन मण्डलियाँ गुग्गा जी के गुणों की महिमा गांवों-गांवों में सुनाती फिरती हैं, नगें पैरों चलते और रात को भूमि पर ही शयन करते हें। 'कडप्पे दे गुग्गा' से भी एक मण्डली भी रक्षा बन्धन वाले दिन से चलती और नवमी 'जिसे गुग्गा नवमी' भी कहते हैं उसके पिछले दिन वापिस मंदिर में पहुंचती है। यह मण्डली जाहरपीर गुग्गा की कथा तो बहुत लंबी सुनाती है, उसके मुख्य अंश कहानी के रूप में निम्नलिखित दिए जा रहे हैं।

माता वाछल जो राजा ज्योरा मारु देस (बंगाल) की रानी थी, राजमहल में सब कुछ था, परंतु सन्तान न होने की वजह से राजा की अपेक्षा रानी अधिक व्यथित रहती। सौजन्य वंश गुरु गोरखनाथ जी अपने नौ लाख चेलों के सहित राजा ज्योरा के बाग में पधारे, राजा ज्योरा के राज्य में भंयकर सूखा पड़ा हुआ था।

गुरु गोरख नाथ जी ने बाग में अपने चेलों को तम्बू लगाने का आदेश दिया और प्रत्येक तम्बू में धूना लगाने को भी कहा गया। जब यह कार्य खत्म हो गया तो चेलों को कहा गया कि सब चेले अपने-अपने नरसिगों, शखों से ध्वनि करें। जब पहली बार शंख ध्वनि हुई तो धरती हिलने लगी, दूसरी बार ध्वनि करने पर आसमान बादलों से भर गया, तीसरी बार ध्वनि करने पर ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगी। चौथी बार दक्षिण दिशा की ओर से बिजली चम-चमाने लगी। जब पाँचवे शँख को ध्वनि लगाई तो प्रभुकृपा से मारू देस में वर्षा होने। लगी वर्षा के कारण कई दिनों से सूखा बाग हरा भरा हो गया, पानी के चश्में भर गए।

माता वाछल ने अपनी दासी से प्रतिदिन की भांति पानी लाने को कहा, 'क्योंकि वर्षा न होने के कारण पानी दूर से लाना पड़ता था। दासी ने जब रास्ते में बाग को हरा-भरा, चश्में को पानी से भरें और साधुओं को देखा—वह हैरान रह गई। उसने झटपट पानी मटके में भरा और चल दी। वाछल के पूछे जाने पर कि वह इतनी जल्दी पानी कहाँ से ले आई तो दासी ने उत्तर दिया, 'जिन गुरुओं का आप निरन्तर ध्यान करती हैं वहीं गुरु गोरख नाथ जी अपने नौ लाख चेलों सहित सूखे बाग में डेरा लगाए हुए हैं।

मुझे पानी निकट ही मिल गया क्योंकि सारा बाग हरा-भरा और समस्त चश्में पानी से भरे हुए थे।

दूसरी ओर गुरु गोरख नाथ जी ने अपने सबसे बड़े चेले को आदेश दिया कि—'धनेरिया और काहनी चेला कस्बें से जाकर भिक्षा लाएंगें। जो कुछ होना था वह तो गुरु जी सब कुछ जानते थे। जब वाछल रानी के महल के बाहर

घनोरीए चेले ने शंख ध्वनि की तो वाछल ने दासी को यह पता लगाने के लिए कहा—'बाहर पता करो कि शंख बजाने वाला कोई साधु है या भिखारी? बाहर जाकर देखा कि वहीं साधु हैं जो कि उसने बाग में देखे थे। झटपट अन्दर गई और वाछल रानी से कहा, 'जिन गुरुओं की आप भक्ति करती हैं उन्हीं साधुओं में से यह एक हैं। उसने बाग वाली कहानी दोहराते हुए कहा।

तब माता वाछल ने एकदम हीरे मोतियों का थाल भरा और साधु के दर्शन करने के लिए बाहर आ गई। साधु ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि हमें रोटी के सिवाए और किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं, इन वचनों को सुनकर रानी प्रभावित हुई उसे यह समझ में आ गया कि यह कोई सिद्ध ही हो सकता है। अर्थात् रानी वाछल ने साधु को योग्य आसन दिया।

आसन पर बैठने के बाद वाछल ने प्रश्न पूछा, 'आपने यह मार्ग क्यों अपनाया है।' मैं योग के द्वारा जीवन रूपी सागर से मुक्त होना चाहता हूँ। साधु ने उत्तर दिया। अत: माता ने घनोरिए चेले की परीक्षा लेनी चाही और उसे रोटी खाने के लिए बर्तन निकालने के लिए कहा।

बर्तन की बात सुनते ही घनोरीए चेले ने झटपट झोली से एक छोटी सी रीढ्ढे की कटोरी निकाली, कटोरी इतनी छोटी थी कि रानी वाछल हँसने लगी, यह हँसी गर्व का सूचक थी, वाछल ने कहा, 'हे साधु! इतने छोटे बर्तन में मैं क्या डालूंगी। क्या आप इसमें पड़े हुए भोजन से पूर्णतया संतुष्ट हो जाएंगे। इन शब्दों को सुनकर साधु (घनोरीए) चेले ने सोचा कि रानी के मन में घमण्ड है तथा इस घमण्ड को चूर किया जाए साध ने कहा :

**इस प्यालुए जो भरी दे माता वाछले,**
**होर न मगंदा कोये; वाछले।**
**इक मण सटेया, प्यालु खाली रये,**
**दस मण सटेया, प्यालु खाली रये,**
**वीह मण सटेया, प्यालु खाली रये,**
**महाराज जाणे ही जीओ जी।**

अर्थात् छोटी सी रीठ्ठे की कटोरी में बीस मन तक आनाज़ डाल दिया, वह कटोरी नहीं भरी, हार मान कर घनेरीए चेले के चरणों में गिर पड़ी। सिद्ध घनेरीए माता वाछल को समझाया की उन्हें अभिमान नहीं करना चाहिए, जो भी उनके साथ यह हुआ अभिमान का तो ही परिणाम हैं। जिसने अभिमान किया उसे हार ही तो खानी पड़ती हैं। फिर चेले ने कहा कि उसे घबराना नहीं चाहिए। साथ में सलाह भी दी कि अपने मन को नहा कर साफ करें और सवा सेर का भोजन पकाएँ, यह रीठ्ठे का छोटा सा प्याला भर जाएगा।

उपरोक्त सलाह के अनुसार माता वाछला ने निर्मल चित्त स्नान किया तथा सवा-सेर आटे का भोजन बनाया और योगी जी के चरणों में सहर्ष भेंट किया। खाना-खाने के बाद सिद्ध घनोरीए ने रानी वाछल को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। आशीष सुनते ही रानी वाछल रोने लगी और कहा, 'मैंने कई वर्षों तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, वरुण, वात आदि देवताओं की सेवा-अर्चना एवं उपवास किए परंतु व्यर्थ, शायद मेरे नसीब में संतान का योग ही नहीं है।

मेरे घर पुत्र भी कैसे हो सकता है क्योंकि गर्भधारण करने योग्य मेरी आयु भी नहीं हैं। माता वाछल की करुणा-भरी पुकार सुनकर घनोरीए चेले के साथी चेले काहनी ने माता को बताया, हे माता! आपने सिद्ध पुरुष श्री गोरख नाथ जी के डेरे में आना वहाँ पर मैं अपने गुरु जी से दो फल दिलाऊंगा, जिसके सेवन करने से आपके घर में संतान पैदा होगी। 'गोरख नाथ जी रहते कहाँ है?' रानी वाछल ने बड़ी उत्सुकता के साथ पूछा। 'जो वाग सूखा-हरा भरा दिखाई दे रहा हो, जहां पर नौ लाख साधु एक टाँग के बल तपस्या करते हों, वहाँ पर श्री गुरु गोरख नाथ जी रहा करते हैं।' काहनी चेले ने समझाकर कहा।

दूसरे दिन राजा ज्योरा और रानी वाछले जाने की तैयारी में लग गए, तभी रानी वाछल की बहन काछल आ पहुंची। 'क्या यहाँ पर कोई खुशी का अवसर आ गया है? इतनी चहल-पहल क्यों है, जो मैंने कभी भी नहीं देखी।' काछल ने बड़ी हैरानी से माता वाछल से पूछा।

वाछल ने अपने साथी बीती हुई घटना दोहराते हुए कहा 'हम तभी गुरु गोरख नाथ जी के डेरे में जा रहे हैं। वहाँ जाने से हमें गोरख नाथ जी फल देंगें उससे हमें पुत्र-प्राप्ति होगी यह सुनकर काछल ने वाछल के साथ छल करने की मन ही मन में ठान ली। 'बहन जी! मैंने मायके जाना है, मुझे अपने कपड़े तो दो।' काछल ने वाछल से कहा। मेरी प्रत्येक चीज़ आपकी है वाछल ने स्नेह जताते हुए कहा। बस फिर क्या था, काछल ने वाछल के कपड़े पहने और गुरु गोरख नाथ जी से वाछल कहकर फलों की प्राप्ति करके बाद में अर्जुन, सुर्जन नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।

दूसरी ओर वाछल रानी अपने पति ज्योरा सहित गुरु गोरख नाथ के डेरे पर पहुंचे, परंतु बहुत देर पुकारने, चिल्लाने, रोने और करुण रुदन करने के बाद गुरु गोरख नाथ जी ने आँख खोली और कहा— 'आज फिर फल माँगने चली। कल सवा सेर अन्न की रोटियाँ लाई, आज सैकड़ो मन आनाज़ पकाकर ले आई हो।

ऐसा सुनने पर वाछल ने इस प्रकार कहा :—

**मैं न थी मेरे जोगिया,**<br>
**दिक्खा ध्यान लगाई**<br>
**मेरी बैण मिज़ो हो चत्तर,**<br>
**बैण गई छले लाई।**

(अर्थात् मेरी बहन काछल छल करके आपसे दो फल ले गई है।) गुरु गोरख ने वाछल का हठी रवैया देखकर अनहोनी शर्त पूरी करनी को कहा' जाओ मिट्टी के बर्तन में कच्चे सूत के धागे द्वारा पानी कुएँ से निकालो, फिर आपको फल (पुत्र) देने के बारे में सोचेंगे।

यह सुनते ही वाछल कुएँ पर गई, वरुण देवता की स्तुति की, शीघ्र ही वरुण देवता प्रकट हुए, फिर वरदान माँगने को कहा। माता वाछल ने अपने साथ बीती हुई घटना से वरुण देवता को अवगत कराया। वरुण देवता ने कहा 'मुझे एक डिब्बी में बन्द कर लो, फिर मुझे वहाँ खोल देना, मैं वर्षा करके गुरु गोरख नाथ के नौ लाख चेलों को स्नान करवा दूँगा।'

माता वाछल ने गुरु द्वारा प्रदत्त मिट्टी का बर्तन लिया, उसमें सूत का धागा बाँधा और डिब्बी जिसमें लघु रूप में वरुण देवता रखे हुए थे, डाल लिया।

ज्यों ही वाछल ने डिब्बी गोरख नाथ जी के पास जाकर खोली, बड़े ज़ोर की भयंकर वर्षा होने लगी। शर्त पूरी न होते देखकर गोरख नाथ चेलों सहित भाग खड़े हुए क्योंकि वाछल के कर्मों में पुत्र नहीं था। आगे-आगे गुरु गोरख नाथ पीछे-पीछे माता वाछल चलती गई जब घने जंगलों में माता वाछल भूल गई तो वहीं पर (घने जंगल) में गुरु गोरख नाथ जी के नाम का जप करने लगी। जप करते-करते बारह वर्ष बीत गए और उसके शरीर पर दीमक ने घर बना लिया। प्रत्युत वह जप में लीन ही रही।

एक दिन रात को जब गोरख नाथ निंद्रा-अवस्था में थे तो उन्होंने स्वप्न में देखा कि 'मारु देश में माता वाछल घोर तप कर रही है, अतः उसे माता वाछल की तपस्या सफल करने की सलाह एक वाणी के रूप में दी गई।

सुबह होते ही गोरख नाथ अपने चेलों सहित मारु देश के लिए रवाना हुए। अन्त में उसी जगह के निकट पहुंच गए जहाँ माता वाछल तपस्या कर रही थी। वहाँ गोरख नाथ जी ने काहनी चेले को कहा कि जाओ आग जलाने के लिए लकड़ियाँ इक्ठी करके लाओ। आज्ञा पाकर काहनी चेला चल पड़ा, एक जगह पर दीमक के बनाए गए ढेर से 'जय गोरख नाथ-२-२-२-२-२- की आवाज सुनकर हैरान हो गया और सारा वृतान्त गुरु गोरख नाथ जी को बताया। गोरख नाथ ने चेलों को वहाँ चलने के लिए आदेश दिया। वहाँ जाकर देखा कि काहनी चेले द्वारा बताई बात ठीक ही थी। माता वाछल को बाहर निकाला गया, घोर तपस्या का कारण पूछा 'माता वाछल ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा जाहिर की। यह सुनकर गुरु गोरख नाथ कहने लगे, 'यद्यपि तुम्हारे कर्मों में पुत्र प्राप्ति का योग नहीं है फिर भी मैं प्रयत्न करुँगा। वही वाछल और नौ लाख चेलों को छोड़कर गुरु गोरख नाथ जी शिवजी से मिलने के लिए कैलाश को चल पड़े।

कैलाश पहुँचने पर शिव जी ने आने का कारण पूछा 'माता वाछल की पुत्र हेतु कामना के बारे में गुरु गोरख नाथ जी ने उन्हें अवगत करवाया। शिव ने कहा, 'चलो विष्णु के पास चलते हैं, विष्णु के पास पहुंचने पर सारी घटना सुनाई।

भगवान विष्णु कहने लगे कि वाछल के कर्मों में पुत्र नहीं हैं। ऐसा सुनने पर गुरु गोरख नाथ जी ने विष्णु से कहा, 'मैंने आज दिन तक जो भी जप योग किया है, उसके बदले कृपया माता वाछल को पुत्र दे दिया जाए। इस बात को सुनते ही भगवान विष्णु शिव की ओर देखकर मुस्कराए और कहा—'महेश! आपको दुनिया में लोग वरदाता मानते हैं, तो कृपया अपने माथे से जाहर पीर उतार कर दे दो। इसके बाद शिव जी ने गुरु गोरख नाथ को अपने माथे की मैल उतार कर दी, हाथ पर मैल रखते, उसने फलों का रूप धारण कर लिया। कैलाश से गोरख नाथ जी मारुदेस में गए, वहाँ पर फलों को माता वाछल के हाथ में देते हुए कहा 'इन फलों के सेवन करने से ऐसा बालक पैदा होगा।

जिसके समान कोई बलशाली नहीं होगा, अमर, और नागों का सरदार माना जाएगा।' फिर नौ सौ चेलों ने शंख बजाया और चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। फिर आज्ञा पाकर रानी महल को गई, वहाँ फलों का सेवन करने से जाहर पीर गुग्गा का प्राकट्यस हुआ। तभी से गुग्गा जाहर पीर नाम से जाना जाने लगे।

रक्षा बन्धन वाले दिन से नवमी के पिछले दिन यह मण्डलियाँ गुग्गा के गुणों की महिमा गाती रहती है, तथा हिमाचल में सभी जगह जाहर पीर गुग्गा जी के स्थानों पर मेले लगते हैं। लोग गुग्गा जी के मंदिर में श्रद्धा सहित प्रणाम् करते हैं, कुशलता की कामना करते हैं। सचमुच ही जाहर पीर सर्पों के सम्राट हैं।

मृकुला देवी मंदिर उदयकुपुर में काष्ठ उकेरण   छाया—हाकम शर्मा

# हरशिंग मंदिर चनावग

एस. आर. हरनोट
पर्यटन विकास निगम, रिटज एनेक्सी १२७ दी माल, शिमला

शिमला से लगभग ५३ किलोमीटर की दूरी पर, समुद्रतल से ६००० फुट की ऊंचाई पर एक रमणीक गांव है चनावग। इसी गांव में देव हरशिंग का प्राचीन मंदिर स्थित है। शिमला से इस गांव तक दो सड़कों के रास्ते जाया जा सकता है। पहली सड़क शिमला-दाड़गी जाती है। दाड़गी से पांच किलोमीटर की सीधी चढ़ाई इस गांव तक लगती है। दूसरी सड़क शिमला-बिलासपुर रोड़ पर शिमला से लगभग ४० किलोमीटर दूर कराड़ाघाट जगह है। यहीं से कच्चा रोड़ कशलोग चला जाता है। यह रोड़ कशलोग गांव से पीछे मांगू से बाजण चला जाता है। बाजण से चनावग लगभग ५ किलोमीटर दूर रह जाता है। यही सड़क कशलोग और बडोग गांव में स्थित देव हरशिंग मंदिरों के लिए भी चली गई है।

गांव चनावग में देवता का दो मंजिला मंदिर है। पहली मंजिल में देवता के वाद्य यंत्र रहते हैं और दूसरी मंजिल देवता का वास स्थल है। इसी में देवता के आठ से अधिक पीतल के मोहरे पश्चिम को दीवार में बने एक चकोर खाने में रखे रहते हैं जहां उनकी नियमित सुबह शाम पूजा होती है। इन मोहरो का मुख पूर्व की ओर है। पूजा के लिए शंख, घण्टी और धुड़छ/कड़छी की तरह आकृति का जिसमें धूप जलाया जाता है का प्रयोग होता है। पुजारी पहले मन्त्रोच्चारण से धूप जलाता है और फिर देव आराधना घण्टी से की जाती है। उसके बाद ऊंचे स्वर में शंख नाद होता है। ऊपर और नीचे दोनों मंजिलों के आगे बरामदा है। मंदिर का प्रांगण चारों ओर से घने वृक्षों से ढका है। मुख्य दरवाजे के समक्ष एक छोटा चकोर मंदिर है जिसमें भैरव/पहरेदार की पत्थर की विशाल नंगी प्रतिमा है। केवल शरीर पर एक कपीन बनी है। साथ शेर की प्रतिमा है और कई लोहे की गुरजें और कड़ोलें विद्यमान हैं। लकड़ी की एक दो मूर्तियां गल गई हैं जिन्हें पीछे की ओर रखा गया है। इन दोनों मंदिरों पर स्लेटों की छत पड़ी है। यानी मंदिर पूर्णतया ग्रामीण पहाड़ी शैली में बना है। चारों तरफ दीवार है तथा भीतर जाने के लिए दक्षिण एवम् पूर्व की ओर से रास्ते हैं। ऊपर की मंजिल के लिए सीमेन्ट की सीढ़ियां लगी हैं।

वाद्य यन्त्रों में देवता के तीन चाम्बी ढोल, एक नगाड़ा, दराग, करनाल और नरशिंगा मुख्य हैं। जातर में जब यह देवता जाता है तो इसके रथ को सुंदर ढंग से सजाया जाता है। रथ में आठ मोहरे लगते हैं। मुख्य मोहरा जो सबसे ऊपर लगता है उसके ऊपर बड़ा सोने का छतर सजा रहता है। चारों तरफ चार कलश और चांदी के छतर सजाए जाते हैं। पीछे की तरफ मां काली का मोहरा लम्बे बालों के मध्य ढांपा रहता है। रथ को चार व्यक्ति उठाते हैं। कभी दो भी। रथ में चारों तरफ एक लम्बी चांदी की गाची इसके सजावट में चार चांद लगा देती है। इसी तरह के रथ कशलोग और बडोग गांव में भी सजाए जाते हैं। कशलोग गांव में भी साधारण मंदिर हैं और यहां के देवता को हरशिंग देवता का छोटा भाई माना गया है। इसके साथ चण्डी पंचायत में दूसरा गांव है—बडोग। यहां भी सिमेंन्ट और पत्थर का सुंदर दो मंजिला मंदिर है। बाहर बरामदा है। दूसरी मंजिल में देवता के मोहरे रहते हैं। प्रांगण में भगवान हनुमान, मां काली तथा भैरव की विशाल मूर्तियां सिमेन्ट की बनी है।

गांव चनावग से लगभग ५ किलोमीटर की दूरी पर उत्तर की ओर ८०५० फुट की ऊंचाई पर हरशिंग पर्वत है जो इस देवता की जन्म स्थली है। यह धार बहुत विशाल है। इसके उत्तर की ओर सतलुज नदी लगभग ५३५ मीटर की

ऊंचाई पर बहती है। यहां से चारों तरफ की दृश्यावली अविस्मरणीय है। यहां अब कशलोग, बडोग और चनावग क्षेत्र की जनता ने देवता का नया मंदिर बना दिया है। पहले यह मंदिर बहुत छोटा था। इस छोटे मंदिर को भीतर उसी तरह सुरक्षित रखा गया है। नए मंदिर निर्माण के वक्त जब इस दरवाजे को उखाड़ कर नया दरवाजा लगाना चाहा तो जैसे ही एक मजदूर ने इसे उखाड़ने के लिए कुदाली मारी भीतर एक भयंकर सांप ने फूंकार भर दी। इस से मजदूर भाग गए और डर कर वहां नहीं आए। दूसरे दिन जब देवता को पूछा गया तो देवता ने इस दरवाजे को बदलने से मनाही कर दी और कहा कि यह दरवाजा देवता को बहुत प्रिय है।

मंदिर के गर्भगृह में देवता की पिंडी स्थापित है। यहीं एक विशाल शिला भी है। कुछ लोग कहते हैं कि देवता की पिंडी अब यहां नहीं है। उसके स्थान पर अब एक खोला/सुराख/धरती के भीतर है जिसके ऊपर शिला रखी गई है। शिकारियों के लिए कभी यह धार लोकप्रिय रही है। यहां हिरण और घोल्ल बहुत होते हैं। लेकिन देवता की मर्जी से यहां शिकार नहीं खेला जाता था। यदि कोई शिकारी देवता के पास मनौती कर देता तो तत्काल उसकी बन्दूक का निशाना लग जाता। यदि देवता रुष्ट होता तो मुंह के पास कई फायर चलाने पर भी जानवर नहीं मरता था। परंतु अब यह स्थान शिकार के लिए बन्द है। इस धार को सांझी धार भी कहते हैं। क्योंकि तीन पंचायतों के लोग यहां से घास काटते हैं।

**नामकरण :** देवता का नाम सी धार पर प्रकट होने के कारण पड़ा लगता है। इस धार के संबंध में माना जाता है कि बहुत समय पहले यहां हरिसिंह नाम का गोरखा अपने साथियों के साथ रहा करता था। ये दिन भर इधर उधर लूट पात करते और शाम को यहां वापिस आ जाया करते। जब अंग्रेजों ने सतलुज घाटी के साथ सर्वेक्षण किया तो वे यहां भी आए और उन्होंने इस गोरखे को मार दिया। उन्होंने यहां कुछ भवनों का निर्माण भी शुरु किया था लेकिन देवता के प्रकोप से वे इसमें सफल न हो सके। लगता है कि इसी गोरखे के नाम पर इस धार को हरशंग कहा जाने लगा हो। कई लोग इस देवता को भगवान शंकर का रूप भी मानते हैं। और ऐसा भी लगता है कि हरिशंकर से हरशंग बिगड़ कर नाम पड़ गया हो। लेकिन देवगाथा में हरशंग वर्णन आता है जिससे ऐसा लगता है कि यह देवता बाद में ही यहां आया है।

**जन्म :** कहते हैं कि इस धार के साथ बसे गांव रडवाहल के लोग यहां गवालुओं के पास पशु चुगाने भेजा करते थे। लेकिन दूध देने वाली सभी गाएं सांयकाल में खाली थनों को लेकर पहुंचती थी। एक दिन लोगों ने इस बात की जानकारी लेनी चाही और पशुओं के पीछे-पीछे चल पड़े तो देखा कि एक पिंडी पर बारी-बारी गऊएं स्वत: ही दूध गिरा रही है। इस पर उन्होंने इस पिंडी को देव रूप मानकर पूजना शुरु किया। बाद में यह देवो एक व्यक्ति में प्रवेश हुआ और अपने बारे में पूरा विवरण बताया। पहले रडवाहल के लोगों ने अपने गांव में छोटा सा मंदिर बनाया और फिर बडोग के लोगों ने अपने गांव में देवता का मंदिर बनाया और इसे अपना इष्ट स्वीकार किया। एक मत के अनुसार यह भी माना जाता है कि सरसापटड़ी से जब यह देवता चला था तो बडोग के घाट में, जहां देवता का मंदिर है, उसने विश्राम किया था, जिससे यहां पर इस देवता को सबसे बड़ा भाई मानते हैं।

क्योंकि हरशिंग धार तीन पंचायतों की सांझी धार है इसलिए स्वभाविक था कि यह देवता तीन पंचायतों का स्वामी बन गया। एक कथा के अनुसार यह भी कहा जाता है कि हरशिंग धार से लोगों ने इस देवता का निशान अपने-अपने गांव में लाया। इस देवता का कालान्तर में एक मंदिर चनावग गांव से एक किलोमीटर दूर पूर्व की ओर गांव खुनारा में भी है। बताया जाता है कि यहां इस देवता के तीन मोहरे लोगों ने स्थापित किए थे। इस मंदिर का मुख्य दरवाजा उस समय दक्षिण की तरफ था। इसी दौरान राजा धामी जब कहीं बाहर जाने पर अपने घोड़े पर चढ़ता तो वह अक्सर गिर जाया करता था जब वह परेशान हो गया तो एक दिन उसने अपने राज पुरोहित से इस बात की जानकारी चाही। उसने बताया कि उत्तर दिशा को ओर किसी पहाड़ी पंर कोई देवता रहता है जिसके कारण ऐसा होता है। राजा ने तत्काल इस बात का पता लगाने के लिए कुछ सिपाही भेजे। उन्हें काफी अर्से बाद यही मंदिर मिला तो उन्होंने उसको जला डाला। लोगों को दूसरे दिन जब पता चला तो वे बहुत दुखी हुए। क्योंकि मंदिर में तीन मोहरे स्थापित थे इसलिए तीनों पंचायतों के लोग यहां से इन मोहरों को उठाकर ले गए तथा अपने-अपने गांव में उनकी स्थापना कर दी। इस

तरह गांव बडोग में बड़ा भाई, चनावग में मंझला और कशलोग में सबसे छोटा भाई बस गया। देवता के बारे में प्रामाणिक कुछ भी नहीं है लेकिन यह देवता लगभग ५०० वर्ष से भी पहले यहां आ गया था।

गांव चनावग में देवता का प्रवेश अत्यन्त चमत्कारी ढंग से इस दूसरी कथा में कहा जाता है। यह देवता जब जूड़/चनावग पंचायत/गांव की एक गुफा में आया तो वहां के लोगों की छतों पर किसी के चलने की आवाजें आने लगी। कभी किसी के छतों और छप्परों पर पत्थर गिरते थे तथा कभी कोई अन्य चमत्कार हो जाता था। उस समय यह गांव बहुत छोटा था और बताया जाता है कि सुकेत से यहां दो भाई बसने आए थे। एक का नाम रामू था और दूसरे का टाऊ। जब इस तरह की घटना हुई तो रामू ने आराधना शुरु कर दी और देवता उसमें प्रवेश कर गया। उसके बाद उसने इस देवता का एक पीतल का मोहरा बना दिया और कई दिनों तक अपनी छत पर उसे पूजता रहा। इसी कारण लोग इस देवता को 'चांगडू देवो' यानी छत पर निवास करने वाला देवता भी कहते हैं। दूसरा भाई भैरव का पुजारी बन गया। जब लोगों को यह पता चला तो उन्होंने अपने मन की इच्छा के लिए मनौतियां माननी शुरू कर दी। उन्हें लाभ हुआ और फिर जातरों की मनौतियां हुई। फिर रामू देवता के मोहरे को कमर में गाची बांध कर उसमें रख कर जातरों में नचाया करता और दूसरा भाई कन्धे पर शगल और गूरज उठाकर डमरू से देवता को नचाता था। धीरे-धीरे चनावग पंचायत के लोगों ने पैसा एकत्रित किया और इसका रथ छतर बना दिया। तभी से यहां यह देवता मंदिर में रह कर लोगों के सुख दुख का साथी बन गया।

यह देवता कहां से आया और किसका रूप है, इस विषय में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। लेकिन जो पुराने लोग देवता का गीत जिसे 'वाणी' कहा जाता हैं, गाते हैं उसकी पंक्तियों में कुछ वर्णन अवश्य आता है। इस गीत की प्रारंभ से अन्त तक की पंक्तियां नीचे दी जा रही है :—

**हो पगड़ा देवा हो पगड़ा, हाथ जोड़ी जोड़ी अर्जा करदे आसे कल्याणो तेरे।**

गा कर देवता को आमन्त्रित किया जा रहा है। गाने वाला सभी पंचो की ओर से अनुरोध करता है कि हम सभी तेरे भक्त है, तेरे क्षेत्र के रहने वाले हैं, हमारी बिनती है कि तू प्रगट हो जा।

**कणका रे दाणे एबो सतबांजे तेरे,**
**ब्रहमें-बिशणुए मांगे।**

देवता की जब बैठक (पंची) होती है तो उस समय जो पुजारी या दिंऊआ (जिसमें देवता की छाया आती है) होता है उसके हाथ में कणक के दाने दिए जाते हैं। फिर वह उन दानों को सब में बांटता है। ये देवता की तरफ से रक्षार्थ माने जाते हैं। उक्त पंक्तियों में यही बात कही गई है।

**कस देशा थे तू आया देवा, कस देशा थे किया प्याणा जे चल पहाड़े जाणा।**

अब गाने वाले देवता से पूछ रहे हैं कि हे देवा तू यह तो बता दे कि तू कहां से आया है और कहां से तूने यह इच्छा प्रकट की थी कि पहाड़ में रहने के लिए जाना है।

**नीला देशा से आया, सरसापटड़ी थे किया प्याणा चल पहाड़े जाणा।**

अब देवता कह रहा कि वह नील देश से आया है और सरसापटड़ी नामक स्थान से पहाड़ में बसने के लिए इच्छा प्रकट की है।

यहां यह कहना कठिन है कि नील देश और सरसापटड़ी मूल रूप से कहां है। कोई कहते हैं कि देश के किसी ज़िले में हैं और कई लोगों को यह भी धारणा है कि यह स्थान हिमाचल प्रदेश में ही कहीं स्थित है।

**बार सरसा पार सरसा, बिचे गंगा खाई,**
**अंगे-खंगे हीरा जंज्जयाला चलेगा, मूरे भीमा माई।**

उक्त पंक्तियों में वर्णन है कि बीच में गंगा बह रही है, और दोनों तरफ सरसा क्षेत्र है। जब देवता वहां से चलता है तो उसके साथ कई सहयोगी देवता गण चंजयाला, वीर हैं और सबसे आगे मां भीमा काली है।

**सरसापटड़ी थे चलेया-बडोगा रे घाटे आसण लगाया,**
**परबत-परबत टोले पर कोई नी मेरे नजरी आया।**

अब देवता बडोग घाट में पहुंच गया है। यह स्थान चनावग से कुछ दूर हैं जहां अब देवता का मंदिर भी है। यहां देवता ने विश्राम किया है और अपने रहने के लिए उपयुक्त स्थान की तालाश करने लगा है।

**हरिसिंह परबत को ध्यान लगाया, नीचे बगो सतलुज गंगा हरिसिंह परबत पर बासा तेरा।**

बडोग नामक स्थान से देवता ने हरिसिंह परबत पर ध्यान लगाया और अपने स्थाई निवास के लिए यह स्थान चुन लिया। फिर वहां देवता पिंडी के रूप में प्रकट हुआ था।

**गबालुए बडोगुए धूम मचाया, गऊंचे नहाया,**
**फेर गऊए दूध पलयाया।**

बडोग गांव के लोगों ने जब देखा कि उनकी गऊएं हरशिंग धार पर दूध गिराती है तो सारी जगह हल्ला मच गया और फिर देवता के जन्म का सभी को पता चल गया।

**हरिशिंग मंदिर के अतिरिक्त चनावग में देव बडयोगी और शिवजी के मंदिर भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय है।**

**देव बडयोगी मंदिर :** देव बड़योगी वास्तव में सुकेत का प्रसिद्ध देवता माना जाता है। यह देवता माहूनाग का पुरोहित भी है। देव हरिशिंग मंदिर के पीछे झाड़ियों के मध्य इस देवता का कच्चा छोटा मकान रूप में मंदिर है। छत स्लेटों की हैं। मंदिर का मुख पूर्व दिशा की तरफ है। प्रांगण में एक पेड़ के नीचे पत्थर की प्रतिमाएं टंगी रहती है। इस देवता के भीतर एक उल्टा मौहरा है। बताया जाता है कि जो आदमी सुकेत से चनावग आया था वह एक दिन हल चला रहा था। हल चलाते-चलाते उसके फाले में यह मोहरा लग गया। उसने उठाकर देखा तो आश्चर्य चकित रह गया। यह जमीन में उल्टा पड़ा था। इसी व्यक्ति में यह देवता प्रवेश हो गया और उसने यहां आने का कारण बताया। उसके बाद गांव चनावग के लोगों ने इस देवता को इष्ट देव के रूप में मानना शुरु कर दिया।

इसी गांव के मध्य भूमि पुत्र देवता की स्थापना भी है। यह देवता फसल का देवता माना जाता है। वर्ष में फसल पकने पर गांव के बच्चे यहां भोजड़ू भाटी यानी खीर और फुलके पकाते हैं जो देवता का भोग है। देवता भूमि पुत्र का जहां निवास स्थान हैं वहां विशाल खड़की का वृक्ष है और चारों तरफ झड़ियां हैं। मान्यता है कि यदि नियमित इस देवता को पूजा जाए तो गांव में फसल अच्छी होती है।

**शिव मंदिर चनावग :** गांव चनावग की पश्चिम दिशा की ओर लगभग आधा किलोमीटर दूरी पर शिव मंदिर स्थित है। वर्ष १९७९ में गांव की ग्रामीण विकास तथा चनावग द्वारा सभा के गठन के साथ यह निर्णय लिया गया था कि यहां एक शिव मंदिर का निर्माण किया जाए। १९८० से सभा के चन्द लोगों ने इस मंदिर का निर्माण कार्य शुरु कर दिया। यह भार इन सदस्यों ने बिना चन्दा एकत्रित किए उठाया था। एक लम्बे अन्तराल के बाद यह मंदिर पूर्ण हुआ और सभा ने १९८८ को अप्रैल १० के दिन लोक उत्सव में इस मंदिर को लोगों के लिए खोल दिया। मंदिर पत्थर और सिमेन्ट का बना है। पहाड़ी शैली में निर्मित इस मंदिर के गर्भ गृह में शिवलिंग स्थापित है और पीछे की पूरी दीवार में शिव भगवान की विशाल मूर्ति बनाई गई है। मंदिर के नीचे के मार्ग से सीढ़िया बनी हैं। नीचे की ओर मंदिर के समक्ष पहले एक प्राकृतिक पानी की कुफर होती थी परंतु उसे अब एक बड़े मैदान में परिवर्तित कर दिया गया है। इसके साथ माध्यमिक पाठशाला का भवन है। मंदिर का निर्माण यहीं के कलाकार श्री ज्ञानचन्द ने किया है।

# तीज, पत्थर चौथ व सैर

भ्रुखी भारद्वाज 'भ्रुषि'
ढूढ़, शिमला

भारतीय संस्कृति और सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्यताओं, संस्कृतियों में से एक है। इस देश के किसी न किसी भाग में प्रतिदिन त्यौहारों, उत्सवों का आयोजन होता है। सबसे मजे की बात यह कि कई बार कई त्यौहार, त्यौहार और उत्सव, उत्सव न रह कर लोक व्यवहार बन जाते हैं जिसका निरूपण करना कठिन कार्य लगता है। ऐसे ही त्यौहारों में एक त्यौहार पत्थर चौथ का है जो हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी भागों में विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है। भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की चौथ को मनाये जाने वाले इस त्यौहार से पहले दिन तृतीय का चांद होता है इसे 'रिहौली तीज' भी कहते हैं। हरियाली या रिहोली तीज को ही 'चिड़ियों का व्रत' औरतें रखती हैं तथा क्रम बार रखने के पश्चात् किसी एक तीज़ को मोखती यानी मोक्ष पूजा भी करती हैं। दान दक्षिणा देती हैं और जो की रिहौली को (हरी पनीरी) पूजा पश्चात् बहते हुए जल में प्रवाहित करती हैं। इस तृतीय के चांद को देखने की बड़ी उत्सुकता होती हैं। क्योंकि इसे देखना बड़ा ही शुभ माना जाता है। तभी इस सन्ध्या को बूढ़े बच्चे, औरत-मर्द, सभी टकटकी लगाकर आसमान की तरफ निहारते हैं। कहीं पलक न झपक जाए और द्रांती की तरह दुबला पतला चांद कहीं छिप न जाए क्योंकि नवजात चांद बड़ा नन्हा होता है।बाठलों की ओट में या कहीं देखने में देर होगी तो अस्त होने की आशंका बराबर बनी रहती है और जब दिख जाता है तो लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। देखते ही नमस्कार करते हैं और शुभफल मांगते हैं और जो नहीं देख पाते वे पछताते हैं, अकुलाते हैं और मन मसोस कर रह जाते हैं। विधि की बिडम्बना देखिए, इस तीज़ वाली सन्ध्या को बादल अवश्य मण्डराते हैं आंख मिचौली करते हैं और दर्शकों का कौतूहल बढ़ाते है लेकिन दर्शन होते ही औरतें अर्घ्य देकर नमस्कार करके घरों को लौट जाती हैं।

दूसरे दिन की सन्ध्या यानी चतुर्थी को उन्हीं लोगों के चंद्र के प्रति तेवर बदल जाते हैं। इस चांद से इतना परहेज हो जाता है कि उसकी शक्ल देखना तो दूर पश्चिम दिशा को मुंह नहीं फेरते और चांद की ढीठाई कह लीजिए या अपने मन का भ्रम कि चांद न चाहते हुए भी जरुर दिखता है खूब बड़ा चांद होता है। उस सन्ध्या को बादल भी नहीं होते। कभी कनखियों से दिख जाता है तो कभी अनायास ही दृष्टि आकाश की ओर उठ जाती है। चांद का दिखना जैसे किसी सांप का सूंघ जाना है। देखने वाले के लिए अनिष्ट हो गया। उसके पांव तले की मिट्टी खिसक गई और अपराध बोध की ग्लानि से इतना ग्रस्त हो जाता कि प्रायश्चित का रास्ता ढूंढने लगता है मन कुदृष्टि की मार से डर कर इससे बचने के उपाय सोचने लगता है। कई दन्तकथाएं उसके मन मस्तिष्क में घूमने लगती हैं और इसे यथार्थ मान कर मुक्ति की राह पर भटकने लगता उसे पुन: याद आता कि 'द्वापर युग' जब भी कृष्ण ने इस बैरी चांद को अनजाने में देखा था तब उन्हें भी कलंकित होना पड़ा था वह झूठे लांछन से जीवन भर विमुक्त नहीं हो पाये थे इस चांद के दर्शन तथा उन पर दोषारोपण के पीछे जो कहानी है वह घटना इस प्रकार बताई जाती है कि चतुर्थी का (चौथ का) चांद वाली सन्ध्या को श्री कृष्ण जी गऊएं चरा कर वन से वापिस आ रहे थे। दिन भर बरसात बरसने के बाद शाम को आसमान बिल्कुल साफ था और चौथ का चांद खूब चमक रहा था। श्री कृष्ण भी चौथ के चांद से परहेज कर रहे थे। कहीं दिख न जाए वाला डर घर कर रहा था इसलिए वह नीची नज़र धरती पर आंखें गड़ाए जा रहे थे। इस ताजा बरसात का पानी यहां वहां बिखरा था, कहीं गड्ढे में खड़ा पानी था। गायों के खुरों से भी गड्ढे पड़े हुए थे। ऐसे ही किसी गड्ढे के खड़े पानी में श्री कृष्ण जी को चौथ का चांद दिख गया। इस तरह उन्हें मात्र पानी में चांद दिखने से चोरी का झूठा आरोप सहन करना पड़ा। वह तमाम उम्र कहते रहे 'मैं नहीं माखन खायो मैया मौरी मैं नहीं माखन खायो' लेकिन आज तक कोई नहीं मानता है कृष्ण की बात

को। कृष्ण भक्त गीत भी गाते और कृष्ण को चोर भी बनाते हैं जबकि आज तक कृष्ण जी को चोरी करते किसी ने नहीं पकड़ा। इतने महान व युग पुरुष इस मामूली लांछन से विमुक्त नहीं हो पाए तो आम आदमी की क्या बिसात? जिसने साक्षात् देखा हो उसके लिए तो यह अपराध हो गया। पता नहीं जीवन के किस अन्धे मोड़ पर टक्कर खा जाए मति भ्रष्ट हो जाए और आरोप के चंगुल में फंस जाए।

इसी तरह के अपराध-बोध से ग्रसित वह व्यक्ति मुक्ति का मार्ग खोजता है लेकिन अनाप-शनाप में कुछ गलत निर्णय कर लेता है सोचता है इस लगने वाले आरोप का बोझ कौन कब तक उठाए। क्यों न इसका निर्णय आज ही हो जाए इसका प्रायश्चित अथवा दुराग्रह की समाप्ति आज और अभी ही क्यों न हो जाए। इसी भाव बोध से यह कातर मन एक सुंदर या अपराध करने को मजबूर होता है वह देर रात तक पराए घरों की छतों पर पत्थर फैंकता है तथा बदले में गालियां सुनकर सन्तोष अनुभव करता है। जिस घर से गलियां प्रत्युत्तर में शीघ्र नहीं मिलेगी वहां पर पत्थरों की बरसात अधिक होगी। देखिए मन: स्थिति चांद देखकर गालियां सुनने को वह व्यक्ति तरसता है। इस तरह यह गालियों का त्यौ-हार गालियों में ही सीमित रह कर हंसी खुशी से रात के अंधकार में अगले वर्ष उदय होने के लिए अस्त हो जाता है।

भारत के अन्य प्रांतों में भी इस प्रकार के त्यौहार मनाए जाते हैं। जैसे कहीं 'डण्डा चौथ' होती है जिसमें लोग किसी खुली जगह पर डण्डों से खेल खेलते हैं लेकिन यहां प्रसंग कुछ परिवर्तित से होते हैं। महाराष्ट्र के कुछ जनपदों में इस दिन 'गणेश चतुर्थी' मनाई जाती है जो कि पत्थर चौथ वाले दिन ही होती है। भले ही चांद से गणेश चतुर्थी का सीधा सम्बन्ध नहीं होता है लेकिन भाद्रपद मास की चतुर्थी (शुक्ल पक्ष) को ही गणेश की पूजा व विसर्जन होता है। गणेश पूजा की जाती है।

गणेश चतुर्थी की तरह थोड़ी बहुत मिलती जुलती हिमाचल में 'सैर' अवश्य मनाई जाती है वह भी इन्हीं दिनों आती है लेकिन उसका भी चांद से कोई नाता नहीं है। सैर-साजी आश्विन मास की संक्राति को मनाई जाती है भाद्र मास के अन्तिम दिन यानी आश्विन की पूर्व सन्ध्या को सैर का पूजन नाई द्वारा होता है। वह रात को घर-घर जाता है तथा खट्टे को फसल का साण्डि मान कर उसका अनुष्ठान करवाता है। उसके समक्ष ही बरसाती फसल, फल आनाज इत्यादि पूजा के लिए चढ़ाई जाती है। अगली सुबह से फसल काटने, खाने की अनुमति भी मिल जाती है। सैर साजी वाला दिन फसल उद्‌घाटन दिवस होता है, मौज मेला होता है, लोग सेमियां, बबरू तला हुआ पकवान बनाते व खाते हैं। इसी दिन सैर का मेला भी होता है। सीतु नामक सैर के टिड्डे का संगीत कर्ण प्रिय होता है। उसको देखना व सुनना शुभ माना जाता है। इस प्रकार सैर व गणेश चतुर्थी में काफी समता है। बानगी के तौर से देखिए सैर वाली शाम को हिमाचल में लोग अरदास करते हैं। और कहते हैं सैरी, इयां ही हर साल औन्दी रहयां तिजो असां अगले साल भी मनांगें' तो महाराष्ट्र के लोग ठीक इसी प्रकार क्या कहते हैं 'गणपति वपया मोरया पुढवया वर्षी लौकर आ' नि:सन्देह दोनों त्यौहारों के नाम व स्थान अलग-अलग हैं लेकिन भावना एक है, समय लगभग एक है दोनों ही वर्षा ऋतु की समाप्ति पर आते हैं। बरसात को बाधाओं और महामारियों का द्योतक माना जाता रहा है। बरसात में कहीं हैजा तो कहीं प्लेग का डर रहता है। प्लेग जो चूहों से लगती है तथा चूहे जो गणेश का वाहन माने जाते हैं। गणेश की स्तुति होगी तभी चूहों पर नियन्त्रण होगा। चूहे फसलें भी नष्ट करते हैं अत: इनसे सम्मान सहित पीछा छुड़ाने के लिए गणेश की पूजा की जाती है। यदि गणेश चतुर्थी रिद्धि सिद्धि दाता है विघ्न हरणा है तो सैर विपदाओं पर विजय का प्रतीक है। सैर के आ जाने से सावन के अतिक्रमणों से मुक्ति मिल जाती है। घर से बाहिर जाने को रास्ते खुल जाते हैं। नदी नाले सामान्य हो जाते हैं। इस तरह तीज से चौथ आती है फिर नागपंचमी इस दिन नागों की पूजा होती है। मिट्टी के सांप बनाए जाते हैं पूजा उपरांत उनका जल में विसर्जन होता है तथा षष्ठी यानी छठ से चौंदश तक सैर भी आ जाती हैं। इस तरह ये त्यौहारों की श्रृंखला हमारी सांस्कृतिक धरोहर का बड़ा ही सुन्दर संस्मरण प्रस्तुत करती है।

# गुज्जर जनजाति में प्रचलित विवाह प्रथाएं

देसराज डोगरा
सुरेंद्र सदन, शीला रोड़ चैतड़ू
जिला कांगड़ा

गुज्जर और गद्दी हिमाचल प्रदेश की दो ऐसी जनजातियां हैं जो इस बीसवीं शताब्दी के अंतिम प्रहर तक भी यायावरी का जीवन ही पसंद करती हैं। गुज्जर वैसे तो सारे हिमाचल में ही रहते हैं परंतु इनका विशेष निवास चम्बा जिलों के ऊपरी क्षेत्रों—तीसा, किहार, मांदल, मसरुंड, तियूडी डैणकुंड, भरनोता आदि में है। ये गर्मियों और बरसात के ५-६ महीने ऊपर पहाड़ में और सर्दियों में जिला कागड़ा के निचले भाग, बिलासपुर और पंजाब की तहसील पठानकोट में गुजारते हैं। यदि कभी अप्रैल-मई, सितम्बर-अक्टूबर में चम्बा जाने का अवसर प्राप्त हो तो आप सड़क के किनारे ही इनके चलते-फिरते डेरे देखेंगे। आने जाने में ही इनके तीन चार मास रास्ते में बीत जाते हैं। नीचे मैदानों में ये लोगों की ज़मीनों में झुगियां बना कर रहते हैं परंतु ऊपर चम्बा में इनके मिट्टी-पत्थर के अपने अपने घर हैं। ये पहाड़ को ही अपनी जन्मभूमि मानते हैं। गुज्जरों की सारी जमीन-जायदाद इनकी भैंसे ही होती हैं। कई गुज्जरों के पास तो ६०-१०० भैंसे भी अपनी हैं। ऊपर पहाड़ों में ये लोग ७-८ हज़ार फुट की ऊंचाई पर जहां घने जंगल और चरागाहें हैं, आठ-आठ, दस-दस कोठे बना कर रहते हैं। वहां घास और लकड़ी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। हिमाचल प्रदेश सरकार की ओर से भी चरागाहों के हक इन्हें यहां मिले हुए हैं।

मैदानों में ये दूध ही बेच देते हैं परंतु ऊपर पहाड़ों में दूध का घी बना लेते हैं। चम्बा का जो घी प्रसिद्ध है वह इन्हीं गुज्जरों की देन है। ऊपर जाते समय ये खाद्य-सामग्री उठा कर ले जाते हैं।

भ्रमण में भी ये प्रसन्न रहते हैं। सवेरे तड़के या सन्ध्या को ये चलते हैं दिन को कोई अच्छा छायादार स्थान ढूंढ कर पड़े रहते हैं। भैंसों को या तो जंगलों में छोड़ देते हैं, या घास खरीद कर डालते हैं। बसों मोटरों को कई-कई घंटे रास्ते में इन करवों के कारण रुकना पड़ता है। जगह-जगह सड़क पर इनके पड़ाव लगे होते हैं। पत्थर के चूल्हे बनाकर गुज्जरियां खाने-पीने के प्रबन्ध में लगी होती है तो गुज्जर घास और लकड़ी के प्रबंध में बरसात हो या आंधी ये खुले आकाश के नीचे ही सोए रहते हैं। न जाने कब से इनका यह सिलसिला चला आ रहा है।

हिमाचल की जितनी भी जन-जातियां हैं सबकी पृथक-पृथक प्रथाएं है, जों एक से एक विचित्र हैं। प्राय: ही इनके विवाह गर्मियों में अप्रैल-मई में ऊपर जाने से पहले होते हैं। कई बार रास्ते में ही चलते फिरते निकाह की रस्म पूरी कर ली जाती है। जिन गुज्जरों ने नीचे भी घर बना लिए हैं वे अपने विवाह बड़ी घूम-धाम से करने लगे हैं।

### सगाई तथा अन्य उपचार

हिमाचल के गुज्जर इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं इसलिए इनके निकाह शरीयत के ही सिद्धांतों के अंतर्गत ही होते हैं। निकाह से पहले सगाई होती है। बहुधा अपने सगे संबंधियों में ही लड़की ढूंढ ली जाती है। लड़के का बाप या कोई और सियाना लड़की के बाप से लड़की मांग लेता है। आपस में दूध पीने-पिलाने पर यह रिश्ता पक्का हो जाता है। विवाह सुधाने के लिए ये मौलवियों पंडितों के पास नहीं जाते। दोनों संबंधी आपस में बैठकर विवाह की तिथि निश्चित कर लेते हैं। विवाह के लिए कोई लिखित निमंत्रण भी नहीं भेजे जाते। मौखिक रूप से संदेश दे दिए जाते हैं। कहीं कोई सभा हो, समारोह हो, पर्व हो या विवाह किसी व्यक्ति द्वारा यह सूचना ऊंची आवाज़ देकर प्रसारित की जाती है कि अमुक व्यक्ति के घर अमुक स्थान पर लड़के का विवाह होगा या समारोह में एकत्रित हर गांव में से आए

व्यक्तियों को यह दायित्व सौंप दिया जाता है कि वे बर्तनदारों को अपनी अपनी दिशा में सूचना कर दें। विवाह के एक-दो दिन पहले सगे-संबंधी आने शुरु हो जाते हैं। अधिकतर ये लोग दोनों ओर से ही निमंत्रित होते हैं। ये दोनों ओर के बर्तनदार होते हैं।

## बर्तनदार

बर्तनदार वे लोग होते हैं जिनके साथ विवाह वाले परिवार ने पहले बर्तन दिया होता है बर्तन निम्न तीन प्रकार का होता है।

१. तमोल, २. घी का बर्तन, ३. न्यूंदरी बर्तन।

१. **तमोल** : दूल्हे को चलती बारात पर देते हैं। यह १०/२० रुपये कुछ भी हो सकता है।

२. **घी का बर्तन** : यदि विवाह वाले परिवार ने बर्तनदार को पहले एक किलो घी दिया हो, तो उसे डेढ़ किलो देना पड़ता है। डेढ़ किलो या अधिक देने से बर्तन कायम रहता है अन्यथा बर्तन टूट जाता है।

घी का भाव रु. २५ निश्चित है। पैसे नकद लेकर भी घी खरीद लिया जाता है। यह बर्तन कभी कभी ७, ८ हजार तक भी प्राप्त हो जाता है।

३. **न्यूंदरी बर्तन** : न्यूंदरी बर्तन मसानी को कहते हैं। यह भी नकदी की सूरत में दिया जासकता है। यदि किसी को एक रुपया दिया हो तो कम से कम उसे दो देने पड़ते हैं। इसे 'न्यूंदरा' भी कहते हैं। यह अंतिम दिन दिया जाता है। क्योंकि बर्तन दुगना लौटाना पड़ता है। इसलिए हर बार इसकी राशि बढ़ती जाती है। यह एक प्रकार से विवाह वाले परिवार को सहायता दी जाती है। बर्तन का हिसाब एक पुस्तिका में लिखा जाता है जिस पर मौलवी के हस्ताक्षर होते हैं।यदि मौलवी उपलब्ध न हो तो कोई और प्रतिष्ठित व्यक्ति इसे लिख सकता है। हस्ताक्षरित पुस्तिका पर लिखा हुआ बर्तन ही प्रमाणित माना जाता है।

## बारात और बाराती

गुज्जर अधिक से अधिक बारात ले जाने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। बारात में तीन-चार सौ गुज्जरों का होना साधारण बात है। कई बार पांच-छह सौ बाराती भी हो जाते हैं। बारात में गुज्जर अपने परंपरागत बेषभूषा में आते हैं। साधारणतया सिर पर सफेद पगड़ी, सफेद कुर्ता, चैकदार पतरंगी लुंगी, कन्धे पर चादर, पैरो में जूता और हाथ में डंडा होता है। सभी एक जैसी पोशाक पहने होते हैं। पढ़े लिखे भी किसी अन्य वेशभूषा में नहीं आते।

बारात दुल्हन के घर रात को पहुंचती है, पहुंचने पर इन्हें चाय दी जाती है। फिर बर्तन इकट्ठा किया जाता है जिसमें काफी समय लग जाता है। बर्तन इकट्ठा करने के उपरांत रात्रि का खाना होता है। खाना सात्विक और शुद्ध घी का बना होता है। रात के खाने में चावल और दाल, शक्कर और शुद्ध घी आदि दिए जाते हैं। कोई कोई गुज्जर किलो-किलो घी पी जाता है। बारात को दूसरे दिन सबेरे चाय का नाश्ता और दोपहर को चावल, दाल, शक्कर और दही दिया जाता है।

खाने के लिए मेज़, कुर्सियां तो दूर, कोई भी बैठने खाने का प्रबन्ध नहीं होता, न कोई पैंठ कतार लगती है। जहां कहीं भी बाराती बैठे हो, खाना थाली/बर्तन में परोस कर पहुंचा दिया जाता है। दो-तीन गुज्जर एक ही थाली/बर्तन में खाने के लिए बैठ जाते हैं। तीन-चार गुज्जरों का एक ही थाली में खाना, अनोखा दृश्य उपस्थित करता है। बर्तन कम होने की स्थिति में कई कई बार खाना परोसना पड़ता है और कुछ बारातियों को घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। विवाह में घी, दूध, दही के अतिरिक्त कोई खर्च नहीं होता। मांस मछली का नाम तक नहीं होता। ये पदार्थ वर्जित हैं। शराब भी बिल्कुल नहीं पीते। विवाह में यदि कोई पी कर आए तो उसे उसी समय बहिष्कृत कर दिया जाता है। बारातियों को ठहरने का भी कोई विशेष प्रबंध नहीं होता। अधिक से अधिक धान की पराली, यदि उपलब्ध तो, तो बिछा दी जाती है अन्यथा गुज्जर लोग भूमि आसन पर ही रात व्यतीत कर लेते हैं। बिस्तर न कोई लाता है, न दिया जाता है। सभी का

खाने, बैठने, सोने का एक जैसा ही प्रबंध होता है। धनी-निर्धन, सम्बन्धी, मित्र, ऊंचे-छोटे, सभी के साथ बराबर का व्यवहार होता है। कही कोई भेद-भाव नहीं बरता जाता। समाजवाद का सही रूप यहां देखने को मिलता है। रसोइए इनके जुलाह या नाई उपजातियों के होते हैं।

## निकाह :

गुज्जरों में शादियां प्रायः छोटी आयु में ही हो जाती हैं। कई बार तो लड़की ८-१० वर्ष और लड़का १२-१३ वर्ष पार के भी नहीं होते। सामूहिक विवाह का भी रिवाज है। एक ही परिवार के २-३ लड़के-लड़कियां एक दिन ही ब्याह दिए जाते हैं। निकाह के समय एक काजी, एक मौलवी और दो गवाह होते हैं। काजी की फीस पांच रुपये, मौलवी की तीन और गवाहों की दो-रुपये प्रति गवाह निश्चित की हुई है। यह सदा के लिए नियुक्त नहीं होते। समय-समय पर बदलते रहते हैं। सबसे पहले लड़की वालों का मौलवी लड़के वालों से आज्ञा लेता है। उस समय काजी भी उपस्थित रहता है। फिर काजी लड़की के पिता से पूछता है कि तुम्हारी लड़की का अमुक लड़के से निकाह करवा दें। मौलवी फिर काजी से आज्ञा मांगता है कि इनका हक-निकाह कर दें, आज्ञा मिलने पर मौलवी और दो गवाह लड़की के पास जाते हैं मौलवी लड़की को कलमें पढ़ाता है और गवाह मौके की शहादत रहते हैं। मौलवी लड़की को पूछता है कि अमुक लड़का तुम्हें स्वीकार है या नहीं। लड़की की 'हां" कर देने पर पलटकर लड़के के पास आते हैं और लड़के से भी ऐसे ही प्रश्न किए जाते हैं। लड़के की भी हां कहने पर कुछ आपस में शर्तें मानते हैं जो कुछ ऐसी होती हैं :— लड़का वचन देता है कि वह अपनी कमाई का एक भाग अपनी दुलहन को दिया करेंगा और वधु वचन देती है कि वह मेरी दहेज में आई भैंस का दूध पी सकता है आवश्यकता हो तो इसे बेच भी सकता है। कितनी साधारण शर्तें होती है। परंतु एक बार हुए विवाह से तलाक लेना बहुत कठिन होता है। गुज्जरों में एक बार हुआ विवाह जीवन-का बंधन बन जाता है। एक दूसरे से अनबन होने पर दोनों ओर की बिरादरियां इकट्ठी होती है, पंचायत लगती है। बहुधा प्रयत्न यही रहता है कि वर-वधू फिर से इकट्ठे रहें।

## दहेज

दहेज का गुज्जरों में कोई रिवाज नहीं। लड़की को थोड़ा बहुत जेवर, जो उसके शरीर पर होता है, दिया जाता है। कुछ लड़की के लिए कपड़े भी होते हैं। कुछ दिनों उपरांत लड़की को भैंस भी दी जाती है। इन सब पर कोई बंधन नहीं। यह सब अपनी इच्छानुसार ही किया जाता है।

गुज्जरों के विवाह ही नहीं, समूचा जीवन ही रहन-सहन, बर्तन-व्यवहार, खान-पान, वेश-भूषा सादा, साधारण और प्राकृतिक होता है। बर्फीले पहाड़ों के दामन में, भुजपत्र, देवदार, कैल के घने जंगलों की छाया में ये और इनकी भैंसे स्वछंद और शांत जीवन व्यतीत करती हैं। न जगह-जमीन की चिंता, न धन-जायदाद की। साग-पात खा कर और शुद्ध दूध-घी पीकर ये चिंता रहित सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। प्राकृतिक जलवायु और सात्विक भोजन के कारण इनके शरीर भी हृष्ट-पुष्ट होते हैं। गुजरियां भी रूपसी और बलिष्ठ होती है जो चलते फिरते ही संतान को जन्म देती है। अस्पताल होने के कारण जंगली जड़ी-बूटियों से ही अपना इलाज कर लेते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भी यह अपने घुमन्तू जीवन को तिलांजलि नहीं देना चाहते। आज का मानव जिस शांति की खोज में भटक रहा है, उन्हें यह स्वभाविक रूप से ही प्राप्त है। इनका जीवन प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

# उख्याड. गीथड. फुलैच का गीत

जसवीर सिंह
ग्राम व पत्रालय मूरंग, जि. किन्नौर

यूँ तो देवभूमि किन्नौर में फुलैच के पर्व की गूंज भद्रपद के तेरहवें दिन से ही सुनाई पड़ती है, किन्तु जब आश्विन माह की प्रथम प्रभात-रश्मि द्वार पर दस्तक दे जाती है तो किन्नौर निवासी एक या पाँच-छः दिनों तक के लिए देवी-देवताओं के रजत-स्वर्ण मूर्तियों से मण्डित रथों को लेकर कंडो पर चढ़ जाते हैं। विशेषकर रिब्बा, मूरंग तथा नेसंग के लोग आबाल-वृद्ध खान-पान और साज-सामान को लेकर उन अधित्यकाओं की ओर प्रस्थान करते हैं, जहां पर्ण-कुटीरों के मध्य में देवांगण तथा नृत्य एवम् गायन के लिए सपाट वन-स्थली होती है। ये लोग पाँच अथवा छः दिनों तक वहीं डेरा डाले धूम-धाम से 'उख्याड.' का आनन्द लूटते हैं—फूलों का त्यौहार जो ठहरा।

देवता को नृत्यांगण के मध्य में बने चबूतरे में प्रतिष्ठित करके नाना प्रकार के पकवानों तथा पूजन-सामग्रियों से अदृश्य शक्तियों की पूजा की जाती है। ग्राम्य तथा वन्य देवी-देवताओं के सम्मान में पुष्पार्चन, पूजन तथा मनोरंजन इसका मुख्य उद्देश्य होता है। प्रथम रात्रि को तेलीय लकड़ी (जोकटी) की मशालें जला कर एक प्रकार से दीपमाला सी की जाती है, जिसे स्थानीय भाषा में 'साड.पूलिड.' कहते हैं। पर्व के इन दिनों को क्रमशः 'ऊचाम' 'धुने उख्याड. तथा यार उख्याड. कहते हैं।

दूसरे दिन जहां एक ओर किन्नरी नवयुवक पहाड़ों से विभिन्न प्रकार के पुष्प लाकर देवता को समर्पित करते हैं, लोगों में वितरित करते है, वहाँ दूसरी ओर विभिन्न वाद्ययंत्रों सहित 'उख्याड. गीथड.' की सुमधुर स्वर लहरियाँ पार्वत्य-कन्दराओं से टकरा कर प्रतिध्वनित होने लगती हैं। नर-नारी पारम्परिक वेश-भूषाओं से सुसज्जित होकर विशिष्ट ताल-लय पर रात-दिन नृत्य करते हैं। स्त्रियाँ फूलदार दोड़ू, कमर-बन्द, (बुरा गाछड.), चोली, फूलदार पट्टू, सोने-चाँदी के विविध आभूषण कुण्डल, नथ, बालू, चन्द्रहार, कंठ में त्रिमणी, माथे पर तोनोल, वेणी (कायरिक), वक्ष स्थल पर डिगरा-टाब, टुड.मा, इन्द्रनील के हार और विशेष गोलाकार टोपी (प्रेद टेफड.) से अपना सोलह श्रृंगार करके नाचती हैं। पुरुष वर्ग की वेश-भूषा प्रायः ऊनी छुवा, पाजामा तथा किन्नरी टोपी होती है।

तारे जटित नीलाम्बर की छाँव, मध्य में जलती घनीभूत प्रचण्ड ज्वाल, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन तथा चहुँ ओर प्रहरी स्वरूप खड़े चीड़, कैल तथा देवदारू के पेड़ अद्भुत समाँ बँध जाता है। ऐसे मादक वातावरण में लोक-नृत्य रत नर्तक दलों की मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं को देख कर अलौकिक आनन्द की अनुभूति होना स्वाभाविक है।

वैसे यहाँ आम गीत गाने से पूर्व 'बेली बे हो ना, हा या बे हो ना हों' का प्रचलन है, परंतु 'उख्याड. गीथड. की शुरुआत गीत के इस बीजमन्त्र के साथ की जाती है।

'सो मा हे लि ड. हो, या को लि ड. सो मा।' इसकी धुन लंबी, गहरी, विशेष ताल और लय से बद्ध अत्यन्त हृदय ग्राही है। गूंगे के गुड. की भांति इसका अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं।

आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ कदम चलाते, पहले दो या तीन गायिकाएँ गाना गाती हैं, उसके बाद सभी उस बोल की आवृत्ति करते जाते हैं। नृत्य-मण्डली धीरे-धीरे रुक-रुक कर और झुक-झुक कर आगे बढ़ती जाती है। बीच-बीच में पुरुष ग्यारह बार 'हो-हो' तथा अन्त में 'छ स के सा जो रि बा' कहते जाते हैं, इस समय झुकना अनिवार्य होता है।

'सोमा हे लिङ· हो, तोरो माय फाने,
तोरो माय फाने हो, मौनोट्ट थौस्को,
मौनोट्ट थौस्को हो, क्यालखासु यौस्को।

आज की नहीं, बात बहुत पहले की है। मौनोट घार (वर्तमान में 'बदाल' जहाँ से किन्नौर की सीमा आरम्भ होती है) के ऊपरले तथा 'क्यालखास' नामक गाँव के निचले क्षेत्रों की बात है।

'शुना लियो हो, राहो चार सी,
डोम्बेरु हुकुम हो, उपाइकसु छाङ·ा,
उपाइकसु छाङ·ा हो, ऊ कान चे बीराञ।'

सहसा गाँव के मेट ने आवाज़ लगाई कि देवता कें आदेशानुसार पर्वतमालाओं से पुष्प बीन कर लाने वाले (उपाइकस) नौजवान फूल लाने चले जाएं।

'उ ओ रयाशाई हों उपाइकसु छाङ·ा,
रयाशसी तोयाँ हो, मेहलयो शुवा,
रयाशसी तोयाँ हो, पाटीशा बास तङ·,
रयाशसी तोयाँ हो, बाले आशङ· दङ·,
रयाशसी तोयाँ हो, लम्बेयो दाङ·ेरदङ·।'

'हे ग्राम्य देवता ! इस अवसर पर आप प्रसन्न हो। फूल लाने वाले नौजवानो ! आप भी सिर पर सफेद कपड़े की पट्टी (पाटीशा) के मध्य अष्ट धातु से बने रक्षा कवच (आशङ·) तथा लम्बे फ़रसों (दाङ·र) को धारण करके रुचि उमंग तथा उत्साह का प्रदर्शन करते हुए ठीक समय पर फूल लाएं।

इस तरह नवयुवक गन्तव्य की ओर कूच कर जाते हैं।

'रिङ·-रिङ· बीमा हो, श्यामार ठाटङ· दा,
श्यामार ठाटङ· दा हो, श्यामार पालङ· चौन।'

ऊपर-ऊपर चढ़ते जाने पर वे 'श्यामार' नामक ठाटङ· (दोगरी) पहुंच जाते हैं। रात का समय है, चरवाहे दिन के थके माँदे गहरी नींद में सोए पड़े हैं।

'आनता मायनच हो, कुवी छाङ· द्रङ·ल्यासो,
द्रङ·ा-द्रङ·ी हो, शाङ· लेयो कुवी छाङ·।

ज़ोर-ज़ोर से पुकारने पर भी चरवाहे तो नहीं जागे मगर ज़ंजीरों से बँधा हुआ कुत्ता ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा। इस कोलाहल से चरवाहे पुत्र हड़-बड़ा कर जाग गए।

'बोती माइञा हो, सेना बेण्डालान,
पाबङ· शौपके हो, खास खेराङ· डाक के।'

मेल-मिलाप के बाद सारा वृत्तान्त सुना कर पुष्प-संग्रही तरुणों ने पूछा—'ऐ चरवाहे ! (सेना बेण्डालान) क्या हमें लस्सी (छाछ) पिलाओगे?' इस पर एक चरवाहें ने आँखें नम करते हुए बड़े दु:ख भरे स्वर में कहा, 'चरागाह (पाबङ· की घास झड़ गई हैं। (शौपके) और भेड़ों ने (खास) दूध (खेरङ·) देना बन्द कर दिया है, उनके स्तन सूख गए हैं।

बोती रान्ञयो हो, तियो धारङ· सी,
मारती रान्ञयो हो, बोतियु धारङ· सी।''

फिर भी चरवाहा बन्धुओं ने उन्हें पानी की धार (तियो धारङ·) की तरह यानी बहुत कम लस्सी पिलाई, किन्तु घी (मारती) लस्सी (बोती) की धार की तरह अधिक पिलाया।

'ऊ मा ताङे·याँ हो, खास पालसु मौमा,
ग मा ताङ·गिक हो, कार पालसु ईराइं '

तदुपरान्त उन्होंने पूछा— ऐ भेड पालक मामा ! हमने अपने आराध्य देव के लिए पर्वतीय पुष्प बीनने हैं। आप कृपया बताए कि फूल कहां मिलेंगे।' मामा ने नकारते हुए कहा—'मैंने तो फूल नहीं देखे हैं, हां ! आप और ऊपर चढ़ कर खड़डुओं के स्वामी से पूछ लें। सम्भवतः वह आपकी मुश्किलें आसान कर दे क्योंकि देवता का वरद-हस्त तो आपके ऊपर है ही।

'ऊ मा ताडे·यौं हो, कार पालसु मौमा,
ग मा ताड·गिक हो, आश पालसु ईराई।

वे और ऊपर चढ़ गए तथा खड़डुओं (कार) के चरवाहे से उन्होंने प्रश्न किया, 'ऐ मामा ! क्या आपने पर्वतीय पुष्प देखे हैं? मामा ने सिर हिलाते हुए कहा– 'मुझे तो ज्ञात नहीं है। आप इस राह से और ऊपर चढ़ें तथा बकरों (आश) के मालिक से पता करें। आपकी समस्या का समाधान हो जाएगा।

'ऊ मा ताडे·यौं हो, आश पालसु मौमा,
ऊ ता ताड·गिक हो, द्रम राड·ो माफो।'

और ऊपर आरोहित होकर उन्होंने बकरों के चरवाहे से फिर पूछा,—'ऐ मामा ! आपने फूल देखे हैं? यदि हाँ तो कृपया हमें बता दें, देवता हमारी तीव्रता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'ऊ ता ताड·गिक हो, द्रम राड़· माजो,
गुवी सागड·-उवा हो, गुवी ती छाल-छली।'

यहाँ आकर उन्हें सकारात्मक उत्तर मिला,
'हाँ हाँ ! क्यों नहीं, मैंने देखे हैं। ये जो ऊपर दो पहाड़ है, इसके मध्य में एक अतीव सुंदर मनोरम पुष्प-वाटिका है। इसमें नौ प्रकार के फूल हैं तथा नौ ही छोटी-मोटी झीलें झिल-मिलाती रहती हैं।

'जायना कोमो हो, प्यासो प्यास पनिड·
दोहो वायरड· हो, तिलेयो कार छाड·।'

वहां जाकर उन्होंने देखा और अचम्भित हो गए कि दो पर्वतों के मध्यवर्ती पुष्प वाटिका के सबसे भीतरी भाग में 'प्यासो प्यास पनिड·' नामक फूल अपनी अनुपम छटा बिखेरता हुआ महक रहा है। यह दिव्य प्रसून देवताओं को सर्वाधिक प्रिय है। उसके बाहर नन्ही झीलों के आस-पास परम-प्यारा फूल 'कार छाड·' है।

'दोहो बायरड· हो, बेना खास बाला
दो हो वायरड· हो, डाबरिड· राड·ो
डाबरिड· राडने हो, रुज़ा रोड·ेला।'

और उसके बाहर बेना खासबाल' (ऊन के फायों सा कोमल और अत्यन्त सुगन्धित एक गोल फूल) है। उसके बाद पथरीली जगह पर एक बूढ़ा सा फूल 'रोड·ेर' मुस्कान बिखेर रहा है।

'आनता रुज़ा हो, डाबरिड· छायाओ,
गानमी जुशो हो, माटिड· देन टिकैड·।'

वह लगता तो बूढ़ा है, किन्तु आस-पास के पथरीले परिवेश को आलोकित कर रहा है। कितनी प्यारी है इसकी महक ! सचमुच तू धरती माँ के माथे का टीका है।

'दोहो बायरड· हो, ढोलो पानुड·ो पाऊ
दोहो बायराड· हो, 'पिशेंशाड·'उवा।'

उसके बाहर नंगी सी चट्टान पर मद-मस्त करने वाला 'पाऊ' नामक कुसुम सुरभित हो रहा है। और यह क्या? यह तो 'पिशेंशाड़' फूल है जो सौन्दर्य और सुगन्धि का साक्षात प्रतिमूर्ति सा जान पड़ता है।

'पिशेशाड· उवा हो, तिचे रास काली
तिचे रास काली हो, डालड· देन ओशड· सी।

'पिशेशाड·' प्रसून के संग-संग झिल-मिल करती झील के बाहर 'रास काल' ओस कण रूपी मोतियों का हार पहने झूम-झूम कर नाच रहा है।

'दोहो बायरङ· हो, पाओ केसरी,
आनता छोटास हो, गानम ली जुशो।'

इसके बाद लीजिए यह 'पाओ केसरी' नामक माल्य देखने में तो छोटा लगता है, परंतु इसकी भीनी-भीनी महक से दिलो-दिमाग एकदम तरा-ताज़ा हो जाता है। कितना आकर्षक और आनन्ददायक है, यह ठिगना सा नन्हा पुष्प!

'जाइना बायरङ· हो, बुमलाए ची उवा,
निज़राङ· खुले हो, राङ· मा ख्याह्तोसा।'

पुष्प वन के सबसे बाहरी भाग में है 'बुमलाए ची' का अद्भुत फूल। तूलिका सी, अत्यन्त निद्रा प्रिय यह पुष्प पुत्री ऐसी गहरी नींद में सोई पड़ी है कि इसने अभी तक हिम-मण्डित पर्वत-शिखरों की धवलता के दर्शन तक नहीं किए।

'द्रम छो गियाँ हो, काशो डोम्बोरु,
द्रमा छोगिक हो, जाडू· डोम्बोरु।

सबसे कठिन कार्य होता है, उस 'जौङ·र' फूल को खोज निकालना, जिसकी जड़ एक हो और फूल लगे हों दो।

क्या आपने उस फूल को ढूंढ लिया है?'

'हां! मैंने हमारे इष्ट देव के लिए उन्हीं के आशीर्वाद से वह फूल चुन लिया है। अब चलो, वापिस चलें।'

'यौ चालो ख्यामा हो, उपाइकसु छाङ·।
यो चालो ख्यामा, जाडू· डोम्बोरे।'

देखिए! पुष्पों से लदे नवयुवक नाचते हुए पहाड़ी से उतर रहे हैं और नीचे देवाँगण में स्वर्ण-शैल रूपी देवता जी नौ बीस (१८०) घरों के नर-नारियों के मध्य नृत्य कर रहे हैं।

'ओमता तोके हो, काण्डेयु तिमछे
मि बौल शेदो हो, काण्डेयु तिमिछे।'

आदि काल में मूरंग निवासी इस पर्व को 'तिमछे' कडे में मनाते थे, जहाँ नर-बलि दी जाती थी।

'दो मा छेग्यो हो, शुओ खोमलङ·,
दो मा छेग्यो हो, राहो खोमलङ·।

इस अशोभनीय एवम् जघन्य कृत्य को न तो देवता ने, न तो देवता के कार-करिन्दों ने, (शुओ खोमलङ·) और न ही ग्राम वासियों ने पसन्द किया। अत: नर-बलि की प्रथा बन्द कर दी गई।

'श्योङ·-श्योङ· बनना हो, श्यागो सीमङ·ो
श्यागो सीमङ·। हो, लाङ· बोली शेदो।'

इसके बाद 'फुलैच का पर्व' भोजपत्र के पेड़ों की सीमा से सम्पृक्त एक वन-स्थली पर मनाया जाने लगा और गाय की बलि दी जाने लगी। सभी के न चाहने पर इस रिवाज को भी खत्म कर दिया गया।

'श्योङ·-श्योङ· बनना हो, रियो सीमङ·ो
उख्याङ· सान्तङ· हो, ब्राकद्युम सान्तङ·।।'

तत्पश्चात् न्योजे के पेड़ों की सीमा में उक्त पर्व का आयोजन होता रहा जिसका नाम 'ब्राकद्युम सान्तङ·' है।

ब्राकद्युम मालोन हो, द्रमङ· सान्तङ·ो,
ब्याङ·माचू छैली हो, सान्तङ· मोय ल्योमो।

ब्राकद्युम अर्थात् 'द्रमङ·' देवांगण (सानतङ·) में उसकी शुद्धि के लिए तिब्बती छेलू (चिकू) की बलि दी जाने लगी

किन्तु सर्वसम्मति से इस पाप-पूर्ण कृत्य पर भी अंकुश लगा दिया गया।

'होना जगे हो, युदू ली ब्राड·ग्यास,
युदू ब्राड·ग्यास हो, शुवीग ज़ौदू पोले।'

मज़े की बात यह है कि आज के जमाने में केवल सतू (युद) के त्रिकोण पिण्ड, (ब्राड· ग्यास) जिसमें जगह जगह मक्खन के चन्द्राकार टीके लगे रहते हैं, और लाल गन्दम की पूरियों से ही पूजा करके यक्ष, गन्धर्व और देवी देवताओं को प्रसन्न किया जाता है।

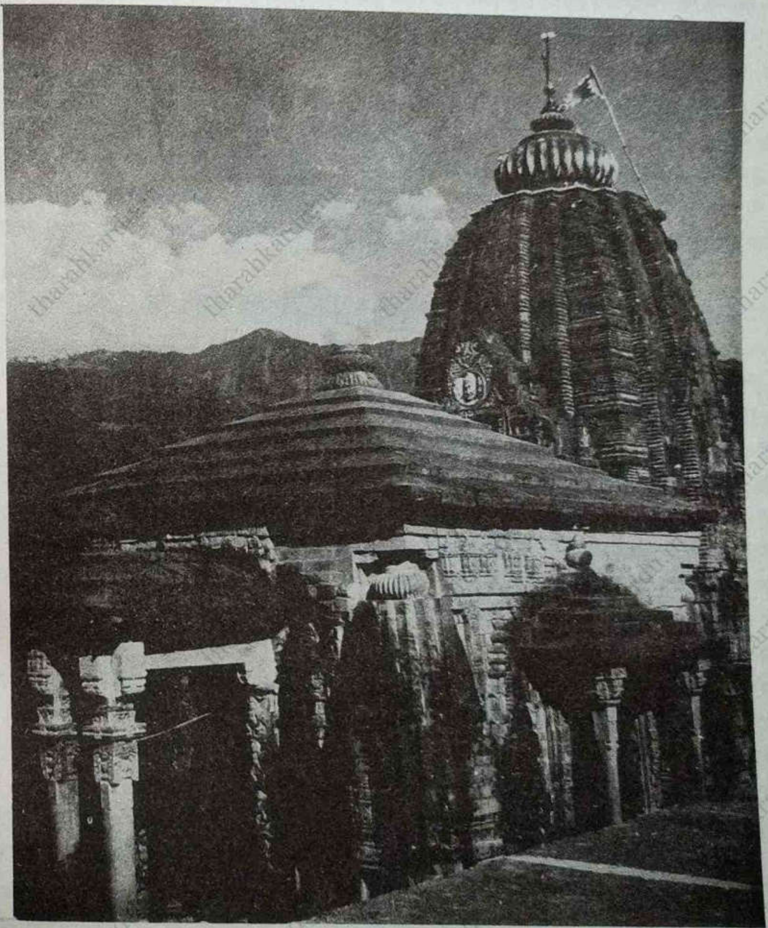

शिवमंदिर बैजनाथ — छाया—हाकम शर्मा

# गुलेरी जी के पत्रों में बाबू श्यामसुंदर दास

डॉ. मनोहरलाल,
के-४७, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली

१६ जुलाई, १८९३ ई. को अपने सहपाठी पं० रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिवकुमार सिंह के सहयोग से नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना करने वाले बाबू श्यामसुंदर दास गुलेरी जी के अनन्य मित्र तथा विश्वासपात्र थे। बाबू जी गुलेरी जी से लगभग आठ वर्ष बड़े थे। उनका जन्म १५ जुलाई १८७५ ई. को हुआ था और गुलेरी जी का ७ जुलाई १८८३ ई. को। बाबूजी ने सन् १८९७ ई. में क्वीन्स कॉलेज, काशी से बी.ए. पास किया था और १९२० ई. में हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए इस पद से १९३१ ई. में अवकाश ग्रहण किया था। उनका निधन ८ अगस्त १९४५ ई. में हुआ था।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के चौथे वर्ष के प्रथम अंक में बाबू श्यामसुंदर दास के 'परिचय' में लिखा था—'जिन्होंने बाल्यकाल से ही अपनी मातृभाषा हिन्दी में अनुराग प्रकट किया। जिनके उत्साह और अश्रांत श्रम से नागरी प्रचारिणी सभा की इतनी उन्नति हुई! हिन्दी की दशा सुधारने के लिए जिनके उद्योग को देखकर सहस्त्रश: साधुवाद दिए बिना नहीं रहा जाता, जिन्होंने विगत दो वर्षों से इस पत्रिका के सम्पादन-कार्य को बड़ी ही योग्यता से निबाहा, उन विद्वान बाबू श्यामसुंदर दास के चित्र को इस वर्ष के आदि में प्रकाशित करके सरस्वती अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।'

ध्यातव्य है कि पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बाबू जी के चित्र के नीचे उनके बारे में ये पंक्तियाँ भी लिखी थी :—

**मातृभाषा के प्रचारक विमल बी.ए. पास।**
**सौम्य शीलनिधान, बाबू श्यामसुंदरदास।।**

सन् १९११ ई. में प्रयाग में हुए अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन में पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वश्री रायकृष्णदास, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा बाबू श्यामसुंदर दास के साथ पहली भेंट हुई थी। दूसरे इन महानुभावों से पत्राचार बढ़ा था। पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा राय कृष्णदास तथा पं० झाबरमल्ल शर्मा को लिखे पत्रों में यत्र-तत्र बाबू श्यामसुंदरदास जी का उल्लेख आया है जिससे ज्ञात होता है कि गुलेरी जी के मन में बाबू जी के प्रति बड़ा आदर-सम्मान था और वह उन्हें मानते भी खूब थे। गुलेरी जी प्राय: बाबू जी के पास आया-जाया करते थे और मुक्तभाव से विचार-विमर्श तथा गप्प-गोष्ठियां करते थे। अपने पत्रों में गुलेरी जी ने उन्हें प्राय: 'विमल साहब' या 'विमल बी.ए. पास' के रूप में स्मरण किया है।

गुलेरी जी ने जयपुर भवन, मेयो कॉलेज, अजमेर से २४ जनवरी १९१५ ई. को रायकृष्ण दास तथा राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के नाम एक संयुक्त पत्र लिखा था—'कृपा-पत्र मुगलसराय पर प्रिय पाठक जी (वाचस्पति जी) ने दिया मुझे, निश्चय जानिए, अनुताप रहा कि आपसे न मिल पाया। वह पढ़ा जबकि कानपुर में द्विवेदी जी भी न मिले, परंतु विमल बी.ए. पास के सौम्य शील ने मेरी शांति कर दी।

सन् १९२० में गुलेरी जी के प्रयत्नों से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' शुद्ध रूप में खोज की पत्रिका और त्रैमासिक हो गई थी और संपादक-मण्डल में थे—गुलेरी जी, बाबू श्यामसुंदरदास, मुंशी देवीप्रसाद तथा गौरीशंकरहीराचंद ओझा जी। इस संदर्भ में गुलेरी जी ने पं० झाबरमल्ल शर्मा को २८ मई, १९२० ई. को जो पत्र लिखा था उसमें बाबू जी के बारे में उनके ये उद्गार थे—श्याम सुंदर बड़े अच्छे आदमी हैं। अकर्मण्यों में एक ही कर्मण्य हैं। आप लोग उनसे दूर रहे हैं अधिक परिचित नहीं हैं। मैं जितना परिचय पाता हूँ, उतना ही उन्हें अधिक अच्छा समझता हूँ।

गुलेरी जी काशी पहुंचने पर विजयनगरम पैलेस, मेलूपुरा में रहते थे। उन्हें काशी में बसाने तथा जमाने के लिए बाबू श्यामसुंदरदास तथा उनके परिवार का बड़ा योगदान रहा। इस संदर्भ में गुलेरी जी ने काशी से ३ मार्च, १९२२ ई. को पं० झाबरमल्ल शर्मा को लिखा था—'बाबू साहिब द्वारा मुझे दिए गए सहयोग के लिए मैं उनका तथा उनके परिवार का कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मुझे यहाँ लगभग सब कुछ दिया है। मैं समझता हूँ उनके बिना यहाँ जीवनयापन करना मेरे लिए असंभव है। इस संदर्भ में, मैं आपसे कभी मुक्त भाव से बातचीत करना चाहता हूँ।'

गुलेरी जी न्याय प्रिय व्यक्ति थे और अन्याय उन्हें सहन भी न था। वे परिश्रम का मूल्य देना तथा प्रतिभा का सम्मान करना जानते थे। बाबू श्यामसुंदरदास बड़े होने पर भी उनसे यदा-कदा धर्मसंकट की स्थिति में परामर्श लिया करते थे और गुलेरी जी नेक सलाह देते थे। पूर्वाग्रहों तथा व्यक्ति संबंधों को आड़े नहीं आने देते थे। उनके लिए सिद्धांत तथा ईमानदारी बड़ी बात थी। बाबू श्यामसुंदरदास ने जब उनसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल विरचित 'बुद्धचरित' का पारिश्रमिक पुरस्कार देने के लिए परामर्श माँगा तो उन्होंने श्यामसुंदर दास जी को 'सभा' के विवेकशाली लोगों में गिनते हुए सब धान बाईस पंसेरी न तोलने के लिए आगाह करते हुए अपने १३ मई, २२ के पत्र में लिखा था—शुक्ल जी के 'बुद्ध-चरित' के पुरस्कार के विषय में आपने मेरा मत पूछा था। मैंने इस विषय पर विचार किया किन्तु निश्चय स्थिर करने में कुछ कठिनता पाई क्योंकि कविता है, कोरा अनुवाद नहीं है और लगभग मौलिक ग्रंथ है। मूल के पृष्ठ २३८ का हिन्दी अनुवाद २३० पृष्ठों में हुआ है। भूमिका के लगभग ५० पेज हैं—मोटे भाग से २८० हुए। 'हुएन सांग के अनुवाद का आपने १५ फार्म तथा 'सुलेमान' का १) प्रति पृष्ठ दिया है। कविता के मानसिक श्रम का अनुवाद स्थिर नहीं किया जा सकता। साधारण प्रकाशक के लिए तो अनुवाद और मौलिक ग्रंथ एक ही है किन्तु सभा के से विवेकशाली लोगों को सब धान बाईस पंसेरी नहीं तौलना चाहिए। मेरी सम्मति में ५०० रुपये कुल पुरस्कार देना ठीक होगा, भूमिका भी मौलिक है उसे पृथक् करने की आवश्यकता नहीं, यह सब २ रुपये पेज से कम पड़ा।'

ध्यातव्य है कि आचार्य शुक्ल प्रणीत 'बुद्धचरित' का सम्पादन गुलेरी जी ने किया था तथा उस पर उनकी सम्पादकीय टिप्पणी भी गई थी।

बाबू श्यामसुंदरदास गुलेरी जी की प्रतिभा के कायल थे। वह अपने जीवनकाल में सभा से गुलेरी-ग्रंथावली का प्रकाशन चाहते थे पर अर्थ-संकट आड़े आ रहा था। इस संदर्भ में उन्होंने २० अगस्त १९३३ ई. को पं० झाबरमल्ल शर्मा को अपने पत्र में अपनी विवशता प्रकट करते हुए लिखा था—'गुलेरी जी के लेखों का संग्रह कोई १००० पृष्ठों में (क्राउन अठ पेजी) पूरा होगा। इसके लिए २००० रुपयों की आवश्यकता होगी। सभा में द्रव्य का बड़ा अभाव हो रहा है। कोई बड़ा काम उठाने का साहस नहीं होता। स्वर्गीय राधाकृष्णदास के ग्रंथों आदि का संग्रह निकालने का मैंने विचार किया था, एक भाग निकलवाया भी पर दस-बीस प्रतियां ही बिकी। इससे दूसरे भाग निकालने की हिम्मत नहीं होती।

खेद है कि बाबूश्यामसुंदर दास जी का यह सपना आज दिन तक सभा पूरा नहीं कर सकी।

## लेखकों से निवेदन

सोमसी के लेखकों से प्रार्थना है कि पत्रिका में प्रकाशनार्थ अप्रकाशित, मौलिक, शिक्षाप्रद शोधपूर्ण व सारगर्भित रचनाएं भेजें। रचना टंकित या कागज की एक ओर सुंदर व स्वच्छ लिखी हुई होनी चाहिए। कृपया 'कार्बन कापी' न भेजें। कहानियां और कविताएं सोमसी में प्रकाशित नहीं की जाती है।

**संपादक**

# रंगमंच तलाशते : पहाड़ी नाटक

**हेमकांत कात्यायन**
**कात्यायन कुटीर, मण्डी**

साहित्य हमारे सामाजिक जीवन का जहां एक ओर प्रतिबिंब होता है, वहां दूसरी ओर सांस्कृतिक उपलब्धियों की रक्षा भी करता है। सही मायनों में साहित्य की सृजनात्मकता और सार्थकता भी इन्हीं अर्थों में निहित है कि आज जो मनुष्य का सामाजिक परिवेश है, उसकी जो समसामयिक सच्चाईयां है, वह साहित्य में अंकित की जा रही हैं या नहीं।

जहां तक नाटक लेखन का प्रश्न है यह साहित्य लेखन की एक ऐसी विधा है, जहाँ आदमी आंख-कान यानी मन व मस्तिष्क से पूरी तरह से जुड़ता है। चूंकि यह दृश्य काव्य है, संगीत और अभिनय इसके दो ऐसे उपकरण हैं जिससे नाटककार के मनोभावों को दर्शक आसानी से आत्मसात कर लेता है।

साहित्य में नाटक ही एक ऐसी विधा है जिसके पास स्वयं दर्शक एक श्रोता के रूप में पहुंचता है। केवल भावाभिव्यक्तियों के प्रदर्शन मात्र से ही इसमें अभिरुचि होने लगती है, जबकि साहित्य की दूसरी विधाओं में दिनों दिन पाठकों व श्रोताओं का अभाव महसूस किया जा रहा है। ढेरों काव्य संकलन, औपन्यासिक कृतियां, कहानी संग्रह या निबन्ध आदि प्रकाशित हो रहे हैं परंतु पाठकों की संख्या दिनोंदिन उतनी ही कम होती चली जा रही है। वैचारिक अभिव्यक्ति का अगर सब से सबल कोई माध्यम था, तो वह सम्भवतः नाटक, नट अथवा अभिनय ही था। भरत मुनि ने तो इस विधा को नाट्यवेद की संज्ञा तक दे दी। ब्रह्मा को इसका निर्माता कह कर पुकारा। संस्कृत साहित्य में नाटक को रूपक यानी रूप को आरोपित करना अर्थात् विभिन्न रूपाकारों के प्रयोग से समाज को निदेशित करना, कहा गया।

नाटक या रूपक की उत्पत्ति और इसकी ऐतिहासिक यात्रा को एक ओर छोड़ कर इसके दूसरे पहलू पर बातचीत करें तो यह लगता है कि जनमानस के मनोरंजन का अगर कोई सशक्त माध्यम था तो वह रास लीलाएं थीं। हालांकि रासलीलाओं का सीधा जुड़ाव भगवान या श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करना था और मनोरजंन के साथ-साथ धार्मिक मनोभावनाओं को उजागर करना था लेकिन उस समय भी नाट्य का एक और रूप भी प्रचलित था जिसे स्वांग या नकल उतारना कहा जाता था और उसका उद्देश्य मात्र लोगों के लिए आमोद-प्रमोद पैदा करना था। यही कारण था कि ये नकल उतारने वाले विभिन्न मुखौटे पहन कर, कई प्रकार की मुद्राएं बनाकर, चेहरे व शरीर का हास्यजनक रूप बनाकर जन-साधारण का मनोरंजन करते थे। धीरे-धीरे इन नकलचियों ने अपनी मंडलियां बना लीं और ये लोग जिन्हें मण्डियाली में 'नटुए' कह कर पुकारा जाता था, एक स्थान से दूसरे स्थान जाते और वहां पर गांव के लोगों को ढोल बजाकर इकट्ठा करते तथा उन्हें स्वांग दिखाकर जहां उनका मनोरंजन करते वहां अपनी आजीविका भी चलाने लगे। ग्रामीण जनता उनका आदर करती और उनके आने का इन्तजार भी उन्हें रहता।

हिन्दी साहित्य में नाट्य की यह परंपरा कहां तक चली, इसका उद्‌भव और विकास आगे चल कर क्या हुआ, इससे हटकर यदि हिमाचल प्रदेश में लोकनाट्य की परंपराओं का अध्ययन करें, उद्‌भव और विकास की चर्चा करें और उपलब्धियों पर दृष्टि डालें तो लगता है कि काम से थके हारे लोग जब गांव के गलियारें में सामूहिक रूप से बैठ जाते और कुछ आदतन गीत गा उठते, कुछ पोलणियां (पहेलियां) पूछ कर आमोद-प्रमोद का माहौल बनाते तो कुछ ग्रामीण उस समय पीठ पीछे किसी की नकल उतार कर जनसमूह को हंसाते। कहना न होगा कि लोकनाट्य की प्रथम प्रस्तुति का आरंभ यहाँ से हुआ। उसकी लोकप्रियता दिनोंदिन इस कदर बढ़ गयी कि हर शाम को गांव के खेतिहर इकट्ठे होते और बड़ी देर तक यही समागम चलता रहता। हर दिन नये-नये ढंग मनोरंजन के लिए खोजे जाते और यह सिलसिला यहां

तक बढ़ गया कि संवादों का भी सहारा लिया जाने लगा और उन्हीं संवादों की प्रस्तुति अभिनय के साथ-साथ होने लगी। इतना ही नहीं इस प्रकार के समागम का दायरा इस कदर बढ़ा कि आस-पास पड़ोस व गांव से भी लोग लालटेन का सहारा लेकर भी इन्हें देखने आने लगे। चूंकि इन अभिव्यक्तियों को, जिसे बाद में लोकनाट्य की संज्ञा दी गयी, में लोग अपनी बोलियों में लोग गीत गाते, इनमें लोक संगीत की प्रमुखता रहती इसलिए ये लोग नाटक जनमानस के बहुत नजदीक होते चले गये। कालांतर में कुछ विशेष जाति के लोग जिनमें उत्तर भारत में डोम, कश्मीरी में भांड़ कई भागों में नकलची या स्वांगी और हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा में झीवर, घिरथ, मण्डी में बांठ, नटुए, नाथ आदि वर्ग के लोगों का तो यह जाति व्यवसाय ही बन गया।

जहां तक हिमाचल प्रदेश में यहां की उपभाषाओं (बोलियों) में लोक नाट्यों के उद्भव और इनकी परंपराओं का प्रश्न है, विभिन्न जनपदों में उस समय भी लोक नाट्यों का खूब प्रचलन था। मुख्यरूप से कहलूरी में चन्द्रौली, कांगड़ा में स्वांग व भगत, सिरमौर में करयाला, मण्डी, कुल्लू व बिलासपुर में हरण व बांठड़ा जैसे नाट्य रूपों का प्रचलन था। यहाँ तक की हर इलाके में एक दल तो अवश्य ही था। उपरोक्त सभी नाट्य रूपों में भी बांठड़ा का रूपाकार, इसकी प्रस्तुति अन्य लोक नाट्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत, प्राचीन और लोकप्रिय थी।

आज हिमाचल की उपबोलियों में लिखे जा रहे नाट्यरूपों का अभाव पैदा हो गया है। लोक नाट्य की वह परंपराएं जो महान थीं आज लगभग समाप्त हो गयीं हैं। दृश्यकाव्य से ही उपरोक्त विधाओं में हिन्दी की भांति प्रदेश की उपबोलियों (पहाड़ी) में नाटक लिखने के प्रयास पांचवे व छठे दशक में आरंभ हुए। ये प्रयास लोकनाट्यों की विधा से भिन्न थे। इनमें व्यंग्य था। संवाद थे। परंतु अभिनय की गरिमा मनोरंजन का समावेश, रंगमंचीय दृष्टि, कलाकारों और भाषा की सम्प्रेषणता का निरंतर अभाव था। परिणामस्वरूप उपबोलियों में कुछ नाटक लिखे तो गये पर उन्हें रंगमंच तक नहीं पहुंचाया गया लेकिन फिर भी जो थोड़े से प्रयास रंगमंच प्रदान करने के हुए वे काफी सफल रहे।

हिमाचल प्रदेश में इस ओर प्रयास उस समय आरम्भ हुए जब मार्च १९६८ में भाषा एवं संस्कृति विभाग ने 'हिमभारती का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका का आरम्भ स्वर्गीय लालचंद प्रार्थी ने आरम्भ करवाया ताकि हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी कही जाने वाली उपबोलियों में साहित्य लिखा जाए और उसका स्तर बढ़े। उसमें लिखने वाले लोगों के लिए एक लेखकीय मंच मिले। 'हिमभारती' पत्रिका में उपबोलियों में लिखे गये नाटकों का भी प्रकाशन हुआ और आगे की सभी 'हिम भारती' पत्रिका के अंकों में इस प्रकार के नाटकों का बराबर प्रकाशन होता भी रहा। यद्यपि वर्ष १९८३-८४ में भाषा एवं संस्कृति विभाग ने इसके कुछ अंक हिन्दी में निकाले और मार्च ८४ को चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जन्मशती वर्ष की स्मृति में हिन्दी में प्रकाशित विभाग का अन्तिम अंक था। उसके बाद 'हिमभारती' का प्रकाशन हिमाचल कला, संस्कृति, भाषा अकादमी ने संभाला और तय यह हुआ कि इसमें पहाड़ी में ही लिखी गयी रचनाओं को प्रकाशित किया जायेगा। यकीनन तौर पर पहाड़ी में जो लेखक रचनाएं कर रहे थे और करना चाहते थे, इस प्रयास से उन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। इससे जहां उपबोलियों में साहित्य सृजन होने लगा, वहां हिमाचल की कला, संस्कृति, लोक साहित्य की कई विधाओं में भी कार्य होने लगा। इस पत्रिका के माध्यम से उपबोलियों में नाट्य लेखन को भी बल मिला। बहुत से लेखकों ने लगभग प्रदेश की अधिकांश बोलियों में नाटक लिखे, जो इस पत्रिका में प्रकाशित हुए। इन नाटकों में ओं-कार भारद्वाज का 'इक घूट , जगदीश शर्मा का 'सतीपूजा' भूमि सिंह जमाल का 'भ्रष्ट सूबेदार', शिव उपाध्याय का लतीफा', 'गलां हुई बित्तीया', हरिप्रसाद सुमन का नाटक तो उस समय रंगमंच पर अनेकों बार खेला गया, हरिकृष्ण मुरारी का 'खोट', धर्म प्रकाशअर्श का 'मुक्ति', संतराम हरनोट का 'कड़ाकी' बद्रीसिंह भाटिया का 'सादु और हवा' दलीप सिंह वर्मा का 'आसा भी पढ़ना-लिखणा' मदन मोहन कमल का 'आजादी रा मोल' रत्न चन्द निर्झर का 'होर शहनाई बजेगी' और 'टौणा टब्बर' आदि के अलावा बी.आर. मुसाफिर का पहाड़ी नाट्य संग्रह 'घर कुदाल' भास के रूपान्तरित नाटकों का संग्रह 'छनाट' के अलावा लोक संपर्क विभाग के ड्रामा यूनिट द्वारा भी अराम राज्य, राजा की आदि जैसे बहुत से नाटक लिखे और खेले गये जो प्रदेश की उपबोलियों में थे। कहना न होगा कि इनमें से कुछ नाटक रंगमंच पर एक से अधिक बार खेले गये और दर्शकों द्वारा सराहे भी गये।

इतना कुछ कह देने के बावजूद एक मूल समस्या जो इस समय पहाड़ी की बोलियों में लिखे जा रहे नाट्यकारों

आयोजित पहाड़ी में लिखे जा रहे नाटकों की उपलब्धियों व समीक्षा पर चर्चा में अन्य सवालों के साथ-साथ इस मुद्दे पर भी चर्चा हुई कि प्रदेश की उपबोलियों में लिखे जा रहे नाटकों को मंच कहाँ मिल रहा है? इन नाटकों के लिए दर्शक कहाँ है, संप्रेषणीयता के लिए बोलियों में लिखे गये संवाद कहां तक ग्राहय है? इन उपबोलियों में लिखे जा रहे नाटकों का सही मायनों में भविष्य क्या है? क्या ये नाटक केवल मात्र 'हिमभारती' या अन्य पत्रिकाओं में छपे पड़े रह जायेंगे। इसी बहस में यह सुझाव भी आया कि इन पहाड़ी नाटकों का प्रकाशन स्वयं अकादमी करें और वहीं इन नाटकों को मंच भी प्रदान करें। बात नाटकों की स्तरीयता की भी आयी। जहां तक हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी का प्रश्न है कहना न होगा कि बोलियों में लिखी गई किसी भी कृति के प्रकाशन, और यदि सम्भव है तो मंचन के लिए भी पूरी तरह से आर्थिक मदद करती है। परंतु केवल आर्थिक मदद से ही किसी रचना का मंचन सम्भव नहीं हो जाता है। उसके लिए उसी बोली में संवाद बोलने वाले पात्र-कलाकार चाहिए। उसी बोली को समझने और पात्रों से काम लेने वाले निदेशक चाहिए। और सबसे अधिक उस बोली विशेष को समझने वाले दर्शक चाहिए। प्रदेश की उपबोलियों में लिखे गये नाटकों के सामने यही समस्या मूल है कि दर्शक कहां से जुटाये जाएं? यहीं पर लोकनाट्यों और पहाड़ी में लिखे गये नाटकों की महत्ता को अलग समझना होगा। उस जमीन को तलाशना होगा जहां पर इन पहाड़ी नाटकों को सफलतापूर्वक मंचित किया जा सकता है।

अकादमी के प्रयासों - पुरस्कारों के बावजूद भी हिमाचल प्रदेश की उपबोलियों में साहित्य सृजन बहुत ही कम हो रहा है। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार हो रहा है। हमारे गांव शहर की ओर बढ़ रहे है। वे लोग जो अपनी बोली में बातें करते थे अब वे भी हिन्दी में बातें करना अपना स्वाभिमान समझते हैं। प्रदेश की भाषा नीति यह है कि अभी हिन्दी को भी सरकारी तौर पर पूरी तरह से लागू करने में समर्थ नहीं है। हालांकि हिमाचल प्रदेश सरकार ने सामान्य घोषणा (२५ जनवरी, १९६५) की थी कि प्रशासन की भाषा हिन्दी होगी और पहाड़ी भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित किया जायेगा। आकाशवाणी में यकीननतौर पर कुछ समय बोलियों के कार्यक्रमों को दिया जाता है, पर उसे सुनता कौन है? या तो रचनाकार स्वयं या उनके सगे-सम्बन्धी या कुछ और आयोजक आदि। दूरदर्शन के आ जाने से तो यह सम्भावना और भी गौण होती जा रही है। दूरदर्शन पर भी मात्र केवल आध घन्टे का हिमाचली कार्यक्रम रहता है पर उसमें भी लोक गीतों को ही अधिक समय दिया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में न केवल नाट्य बल्कि अन्य विधाओं में लिखा गया पहाड़ी साहित्य कहां पढ़ा जायेगा? कहां छापा जायेगा तथा कहां उसका मूल्यांकन हो पायेगा।

प्रदेश की कला, संस्कृति, भाषा अकादमी इस ओर हालांकि सतत प्रयास कर रही है कि पहाड़ी भाषा का अपना एक स्वरूप खड़ा हो। जिसमें प्रदेश की उपभाषाओं का पूरी तरह से समावेश हो और वह सबको ग्राहय हो, मान्य हो। हिमाचल प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों में जो दूरियां कम हो रही हैं उनके बीच में सेतु का काम करने वाली बोली हिन्दी है। आपसी संपर्क की भाषा भी हिन्दी ही है। इस दृष्टि से आने वाले समय में पहाड़ी का, प्रदेश की एक अपनी भाषा के रूप में, विकास कब सम्भव होगा। इस पर कई प्रश्नचिन्ह अभी तक लगाये जा सकते हैं। अगर पहाड़ी की जगह हिमाचली भाषा का नाम देकर इन उपभाषाओं के विकास का प्रारूप तैयार किया होता तो पहाड़ी होने की संकीर्णता से हम उबर सकते थे। अगर पंजाब प्रांत की भाषा पंजाबी, हरियाणा की भाषा हरियाणवी, उड़ीसा की उड़िया, बंगाल की बंगाली, गुजरात की गुजराती और असम की असमिया हो सकती थी तो हिमाचल का हिमाचली नाम ही उपयुक्त था।

उपरोक्त भाषा विवेचन का उद्देश्य मात्र केवल पहाड़ी में रचनाधर्मिता में आने वाली अन्य कठिनाईयों में से एक इसे भी मानता हूँ। इसीलिए इसका उल्लेख करना पड़ा। प्रदेश की किसी एक बोली में लिखा गया साहित्य चाहे वह नाटक ही क्यों न हो, उपभाषाओं का एक प्रारूप न होने के कारण उस रचना विशेष की पहचान कहीं बन नहीं पाती है। डोगरी जो पंजाब के बहुत नजदीक थी, उसने अपनी अलग पहचान बनायी और अब कांगड़ी जो डोगरी के काफी करीब है, वह भी अपनी अलग पहचान कायम कर रही है और जैसा की पहले कहा जा चुका है, इस ओर पूरी तरह से प्रयास हो रहे हैं। लेकिन हिमाचल में बघाटी, कहलूरी, चम्बयाली, मण्डियाली, कुलुई, क्योंथली और कांगड़ी जैसी अलग-अलग जनपद की बोलियों को कैसे एक सूत्र में बांधा जा सकता है। कहना न होगा कि जिस तेजी से गांव में शिक्षा का प्रसार हो रहा है

और कुछ बड़े गांवों व शहरों में अंग्रेजी माध्यम की पाठशालाएं जिस तेजी से खुलती जा रही है, उससे भी पहाड़ी भाषा को खतरा है। सन् १९७३ में अपनी पहली पुस्तक 'मण्डियाली और उसके लोकसाहित्य' में मैंने इस बात की ओर संकेत किया था कि—हिमाचल में बोली जाने वाली भाषा पहाड़ी है, केवल यह कह देने से भाषा संबंधी कार्य पूर्ण नहीं होता है। किसी भी बोली को भाषा बनाने और भाषा को समृद्ध बनाने तक का फासला बहुत लंबा है। आज १६ वर्ष के बाद भी पहाड़ी भाषा का इतना स्वरूप भी खड़ा नहीं है, जिसे स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थापित किया जा सके और संवैधानिक रूप से मान्यता मिल सके। अभी हाल ही में भोटी भाषा के अध्ययन व अध्यापन का कार्य इसी शिक्षा सत्र से आरंभ किये जाने की घोषणा शिक्षा मन्त्री ने की है। उन्होंने भोटी भाषा का एक पाठ्यक्रम हिमाचल विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये जाने तथा भोटी में पुस्तकें भी उपलब्ध किये जाने की जो घोषणा की है, सम्भवत: वह सराहनीय प्रयास हैं और इसे निरंतर आगे भी बनाये रखना होगा।

बहरहाल, पहाड़ी में लिखा जा रहा साहित्य अपनी पहचान तभी बना सकता है जब उसकी भाषा को भी मान्यता मिले। उसे पर्याप्त संख्यक लोग समझे, स्वीकार करें। पहाड़ी में लिखे जा रहे नाटकों को भी इस मंच से गुजरना होगा। तभी कोई नाटककार अपनी बात इन नाटकों के माध्यम से श्रोताओं तक पहुंचा सकता है।

अकादमी द्वारा आयोजित शास्त्रीय संगीत का कार्यशाला में एक गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए प्रो० देवू चौधरी। उनकी दायिनी ओर है श्री एल.के. पंडित और बायीं ओर श्रीयुत एस.एन. जोशी, उपसचिव (भा.सं.) हि.प्र.।

# कांगड़ी लोक गाथाओं में पाँडव

**हरिकृष्ण मुरारी**
चिन्तन कुटीर रैत तo व जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश

सुरमय हिमाचल प्रदेश के जनजीवन पर जहाँ राम का प्रभाव है, वहाँ पाँडवों की छाप भी अधूरी नहीं है। इस प्रकार के अनेक लोक गीत, लोक कथाएँ तथा लोक गाथाएँ मिलती हैं। जिनका यहाँ के लोक जीवन से घनिष्ठ संबंध है। लोक साहित्य में जहाँ लोक गीतों तथा लोक कथाओं का वरिष्ठ स्थान है, वहाँ लोक गाथाओं का भी एक अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान है। जिसका मूल्यांकन करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। इन लोक गीतों, लोक कथाओं और लोक गाथाओं के अनेक रूप प्रचलित हैं फिर भी इनकी सुरक्षा अनिवार्य है। क्योंकि नई पीढ़ी में चलचित्र के प्रभाव के कारण इन अमूल्य रत्नों के खो जाने का अत्यन्त भय है। ऐसी ही एक पाँडवों से सम्बन्धित लोक गाथा मिलती है, जो इस प्रकार से है :—

पांडवों की माता कुन्ती को पक्षियों के मांस को खाने की इच्छा होती है। वह क्रमशः अपने पाँचों बेटों से अनुरोध करती है।

| मूल गाथा | रूपान्तर |
|---|---|
| बारा तां बारा बरसां राजे मोयो होइयां, | बारह वर्ष राजा की मृत्यु को हो गए, |
| नई खाह्दे पखरां दे मास जी ! | पक्षियों का माँस नहीं खाया। |
| नंई खाह्दे पखरों दे मास बेटा जी | हे बेटा ! पक्षियों का माँस नहीं खाया। |
| हुक्म कित्ता माता नकुले बेटे, | माता ने नकुल बेटे का आज्ञा दी, |
| पखरां दे मास ल्योणें जी ! | पक्षियों का माँस लाना है। |
| पखरां दे मास ल्योणे बेटा ऐ। | हे बेटा पक्षियों का माँस लाना है, |
| दड़बड़ करदा हाजर होया | दौड़ता हुआ उपस्थित हुआ |
| नकुल सैह बेटा जी। | वह नकुल बेटा। |
| हुक्म दियां सुणाई माता जी। | माता जी आज्ञा करो। |
| जिन्नी तां माता बोल्ले मंदड़े बोल, | जिसने माता बुरे शब्द कहे, |
| जीह्बा जो दिंगा कटाई जी। | उसकी जुबान को कटवा दूंगा। |
| जे दिखिया माता माड़ियां हाखीं, | यदि बुरी नज़र से देखा है, |
| हाखीं जो दिंगा फटाई जी। | तो आँखों से अन्धा कर दूंगा। |
| नी बोल्ले बेटा कुनीहं मंदड़े बोल, | हे बेटा ! किसी ने भी बुरे शब्द नहीं कहे। |
| नी दिखिया मंदियां हाखीं जी। | और न ही बुरी नज़र से देखा है। |
| पखरां दे मांस नी खाह्दे बेटा जी। | हे बेटा ! पक्षियों का मांस नहीं खाया |
| पखरां दे मांस ल्योणे बेटा जी। | पक्षियों का माँस लाना है। |
| मिंजों तां माता मेरी बक्त नी मिलणा, | हे मेरी माँ ! मुझे समय नहीं मिलेगा, |
| डंगरे मेरे कुनी चारने जी। | मेरे पशु किसने चराने हैं, |
| डंगरेयां भुक्खेयां मरी जाणा माता जी। | हे माँ ! पशु भूखे मर जाएंगे। |
| हुक्म कित्ता माता सहदेव बेटे, | माता ने सहदेव बेटे को आज्ञा दी, |

## मूल गाथा

पखरां दे मास ल्योणे जी!
पखरां दे मास ल्योणे बेटा जी!
दड़बड़ करदा हाजर होया,
सहदेव सैह बेटा जी।
हुक्म दियां सुणाई माता जी।
जिन्नी तां बोल्ले माता मंदड़े बोल
जीहवा जो दिंगा कटाई जी!
जे दिखिया माता माड़ियां हाखीं,
हाखीं जो दिंगा फटाई जी!
हुक्म दियां सुणाई माता जी!
बारा तां बारा बरसां राजे मोयो होइयां,
नई खाहदे पखरां दे मांस जी।
पखरां दे मास ल्योणे बेटा जी।
मिंजो तों अम्मा मेरी खेतरों च कम्म मता,
फसल सारी उजड़ी जाणी जी।
मैं फसलां दे पाहरे जो जाणा माता जी।
हुक्म कित्ता माता भीमसैन बेटे,
पखरां दे मास ल्योणे जी।
पखरां दे मास नी खाहदे बेटा जी।
मिंजो तां माता मेरी फहियां मतियां,
किआं ल्योणे पखरां दे मास जी,
किआं ल्योणे पखरां दे मास माता जी।
हुक्म कित्ता माता सतबादी राजे,
पखरां दे मास ल्योणे जी,
पखरां दे मांस नी खाहदे बेटा जी।
दड़बड़ करदा हाजर होया,
हुक्म दियां सुणाई जी।
हुक्म दियां सुणाई माता जी।
बारा तां बारा बरसां राजे मोयो होइयां,
नई खाहदे पखरां दे मास जी।
पखरां दे मास ल्योणे बेटा जी।
मैं तां माता मेरी सतबादी राजा,
सते दी गल्ल मैं गलान्दा जी
पखरां दे मास किआं ल्योणे माता जी।
हुक्म कित्तता माता अर्जण राजे,
पखरां दे मास ल्योणे जी।
पखरां दे मास नी खाहदे बेटा जी।
दड़बड़ करदा हाजर होया,

## रूपान्तर

पक्षियों का माँस लाना है।
हे बेटा पक्षियों का माँस लाना है।
दौड़ता हुआ उपस्थित हुआ
वह सहदेव बेटा।
माता जी आज्ञा करो।
जिसने माता बुरे शब्द कहे,
उसकी जुबान को कटवा दूंगा।
यदि बुरी नज़र से देखा है,
तो आँखों से अन्धा कर दूंगा।
माता जी आज्ञा करो।
बारह वर्ष राजा की मृत्यु को हो गए।
पक्षियों का मांस नहीं खाया।
हे बेटा पक्षियों का मांस लाना है।
मुझे मरी मां खेतों में बहुत काम है।
सारी फसल नष्ट हो जाएगी।
हे मां मैंने फसल की रखवाली को जाना है।
मां ने भीमसेन बेटे को आज्ञा दी,
पक्षियों का माँस लाना है।
हे बेटा पक्षियों का माँस नहीं खाया।
मुझे मेरी मां बहुत बगारें हैं,
पक्षियों का मांस कैसे लाऊं।
हे मां जी! पक्षियों का माँस कैसे लाऊं।
मां ने युधिष्ठर को आज्ञा दी,
पक्षियों का माँस लाना है,
हे बेटा! पक्षियों का माँस नहीं खाया है।
दौड़ता हुआ उपस्थित हुआ,
आज्ञा करो।
हे मां जी! आज्ञा करो।
बारह वर्ष राजा जी की मृत्यु को हो गए,
पक्षियों का माँस नहीं खाया।
हे बेटा पक्षियों का माँस लाना है।
हे मेरी मां! मैं तो सत्यवादी राजा हूँ,
मैं सत्य की बात कहता हूँ।
माता जी पक्षियों का माँस कैसे लाना है।
माता ने अर्जुन को आज्ञा दी,
पक्षियों का माँस लाना है।
हे बेटा! पक्षियों का माँस नहीं खाया।
दौड़ता हुआ उपस्थित हुआ,

| मूल गाथा | रूपान्तर |
|---|---|
| हुक्म दियां सुणाई जी। | आज्ञा करो। |
| हुक्म दियां सुणाई माता जी। | माता जी आज्ञा करो। |
| किन्नी तां माता बोल्ले मंदड़े बोल, | माता जी! किसने बुरे शब्द कहे, |
| जीहबा जो दिंगा कटाई जी। | उसकी जुबान को कटवा दूंगा। |
| जे दिखिया माता मंदियां हाखीं, | यदि माता जी बुरी नज़र से देखा है, |
| हाखीं जो दिंगा फटाई माता जी। | तो माता जी! उसकी आँखों को फोड़ दूंगा। |
| नी बोल्ले बेटा कुन्हीं मंदड़े बोल, | हे बेटा ! किसी ने भी बुरे शब्द नहीं कहे, |
| नी दिखिया मन्दियां हाखीं जी। | न ही बुरी नजर से देखा है। |
| बारा तां बारा बरसां राजे मोयो होइयां | बारह वर्ष राजा की मृत्यु को हो गए, |
| नंई खाहदे पखरां दे मास जी। | पक्षियों का माँस नहीं खाया। |
| पखरां दे मास ल्योणे बेटा जी! | हे बेटा पक्षियों का माँस लाना है। |
| खीर कढ़ा मिंजो खुआई दे माता, | हे माता जी! मुझे खीर तथा हलवा खिला दो। |
| मैं पखरां दे मासे जो जाणा जी। | मैंने पक्षियों के माँस को जाना है। |
| पखरां दे मासे जो जाणा माता जी। | माता जी पक्षियों के माँस को जाना है। |
| कुथु सा रखां मैं धणक धणोटू, | धनुष को कहां रखूं। |
| कुथु रखां पंजेयो बाण जी। | पांचों बाणों को कहां रखूं। |
| पखरां दे मासे जो जाणा माता जी। | माता जी! पक्षियों के माँस को जाना है। |
| हत्थें तां लियां बेटा धणक धणोटे, | बेटा ! हाथ में धनुष को ले लेना। |
| पिट्ठी पायां पंजेयो बाण जी। | पीठ पर पांचों बाणों को लाद लेना। |
| पखरां दे मांस ल्योणे बेटा जी। | बेटा! पक्षियों का माँस लाना है। |
| सब-सब पासैं जायां मेरा बेटा! | मेरे बेटा! सभी ओर जाना, |
| चौथिया कून्टा मत जान्दा जी। | चतुर्थ दिशा में मत जाना। |
| चौथिया कून्टा मत जान्दा बेटा जी! | बेटा! चतुर्थ दिशा में मत जाना। |
| चौथिया कून्टा बेटा जौली खड्ड बगदी, | बेटा! चतुर्थ दिशा में जौली खड्ड बहती है |
| है बडी सैह छयामान (मायावी) जी! | वह बहुत ही मायावी है। |
| है बड़ी सैह छयामान बेटा जी! | बेटा वह बहुत ही मायावी है। |
| रस्तें बच्चा मेरा औखी कोई आई जायै, | रास्ते में बेटा कोई मुसीबत आ जाए, |
| तां मिंजो तूं याद करी लियां जी। | तो तुम मुझे याद कर लेना। |
| औखी दूर होई जाणी बेटा जी। | बेटा मुसीबत दूर हो जाएगी। |
| हत्थैं तां लैन्दा अर्जण धणक धणोटू, | अर्जुन हाथ में धनुष को लेता है, |
| पिट्ठी पाये पंजेयो बाण जी। | पीठ पर पांचों बाण रख लिए। |
| पखरां दे मासे जो जान्दा अर्जण जी। | अर्जुन पक्षियों के मांस को जाता है। |
| तित्तर बटोलियां भुन्नी-भुन्नी खान्दा, | तीतर तथा बटोली पक्षियों को भून-भून कर खाता है। |
| पखरां दे मास नी मिलदे जी। | बड़े पक्षियों का माँस नहीं मिलता है। |
| पखरां दे मास नी मिलदे माता जी। | माता जी! पक्षियों का माँस नहीं मिलता है। |
| इक कून्ट घुम्मीं अर्जणे | अर्जुन ने एक दिशा घूम ली, |
| दूई कून्ट घुम्मीं लेइ, | दूसरी दिशा भी घूम ली। |
| पखरां दे मास नी मिलदे जी। | पक्षियों का माँस नहीं मिलता है। |


tharahkardu.in

## मूल गाथा

पखरां दे मास नी मिलदे माता जी।
त्री कून्ट हंडी राजें चप्पा-चप्पा छाणेयां,
पखरां दे मास नी मिलदे जी।
पखरां दे मास नी मिलदे माता जी।
पिप्पल बलोटू घणी-घणी छां
मिट्ठी-मिट्ठी पौण थी चलियो जी।
मिट्ठी-मिट्ठी पौण थी चलियो माता जी।
माड़ी-माड़ी बत्त इक अर्जणे दिक्खी,
अर्जण तिसा बत्ता जान्दा जी।
अर्जण तिसा बत्ता जान्दा माता जी।
अग्गैं जान्दा इक मन्दर औन्दा,
परौली च मंजा इक डैठेया जी
परौली च मंजा इक डैठेया माता जी।
थकेया अर्जण मंजे पर सुत्ता
नींद्र पेई गेई गूहड़ी जी।
नींद्र पेई गेई गूहड़ी माता जी।
सुत्ते-सुत्ते जो दिन जे बीते,
मीहने दो तिन्न लंघे जी।
मीहने दो तिन्न लंघे माता जी।
माता कुन्तां जो चिन्ता होई,
अर्जण हटि के नी आया जी।
अर्जण हटि के नी आया माता जी।
माता कुन्तां भी टिल्लैं जान्दी,
भीमसैने जो जगान्दी जी।
भीमसैने जगान्दी माता जी।
उठदा भीमसेन माता जो पुछदा,
क्या अज्ज औखी आई जी।
क्या अज्ज औखी आई माता जी।
जिन्नी तां बोल्ले माता मंदड़े बोल,
जीहबा जो दिंगा कटाई जी।
जे दिखिया माता मंदियां हाखीं,
हाखीं जो लैंगा कढाई जी।
क्या अज्ज औखी आई माता जी।
उठदा भीमसैन रासन लैन्दा,
अर्जणे तोपणा जान्दा जी।
अर्जण तोपणा जान्दा माता जी।

## रूपान्तर

माता जी! पक्षियों का माँस नहीं मिलता है।
तीसरी दिशा राजा ने घूम ली चप्पा-चप्पा छान लिया।
पक्षियों का माँस नहीं मिलता है।
माता जी! पक्षियों का माँस नहीं मिलता है।
पीपल का वृक्ष और घनी-घनी छाया,
मीठी-मीठी हवा चली हुई थी।
माता जी! मीठी-मीठी हवा चली हुई थी।
अर्जुन ने एक छोटा सा रास्ता देखा
अर्जुन उसी रास्ते से जाता है।
माता जी! अर्जुन उसी रास्ते से जाता है।
आगे जाता है तो एक मंदिर आता है,
डियोढ़ी में एक चारपाई बिछी हुई है।
माता जी डियोढ़ी में एक चारपाई बिछी हुई है।
थका हुआ अर्जुन चारपाई पर सो गया।
गहरी नींद आ गई।
माता जी! नींद गहरी आ गई।
सोए-सोए को दिन व्यतीत हो गए।
दो तीन मास भी व्यतीत हो गए।
माता जी! दो तीन मास व्यतीत हो गए।
माता कुन्ती को चिन्ता होने लगी,
अर्जुन वापिस नहीं लौटा।
माता जी! अर्जुन वापिस नहीं लौटा।
माता कुन्ती भी टिल्ले पर जाती है।
भीमसेन को जगाती है।
माता जी  भीमसेन को जगाती है।
भीमसेन उठता है और माता को पूछता है।
आज क्या मुसीबत आई है।
माता जी! आज क्या मुसीबत आई है।
जिसने माता जी बुरे शब्द कहे,
जुबान को कटवा दूंगा।
यदि माता जी! बुरी नजर से देखा है,
आंखों को निकलवा लूंगा।
माता जी! आज क्या मुसीबत आई है।
भीमसेन उठता है और राशन ले लेता है।
अर्जुन को ढूंढने जाता है।
माता जी ! अर्जुन ढूंढने जाता है।


tharahkardu.in

| मूल गाथा | रूपान्तर |
|---|---|
| इक कून्ट हंडी लेई दूई कून्ट हंडी लेई, | एक दिशा घूम ली, दूसरी दिशा घूम ली। |
| अर्जण नज़री नी आया जी। | अर्जुन दिखाई नहीं दिया। |
| अर्जण नजरी नी आया माता जी। | माता जी! अर्जुन दिखाई नहीं दिया। |
| त्री कून्ट हंडी लेई भीमसैने सारी, | भीमसैन ने तीसरी दिशा भी सारी घूम ली। |
| अर्जण नजरी नी आया जी। | अर्जुन दिखाई नहीं दिया। |
| अर्जुण नजरी नी आया माता जी। | माता जी : अर्जुन दिखाई नहीं दिया। |
| चौथिया कून्टा हुण भीमसैन जान्दा, | अब चौथी दिशा की ओर भीमसेन जाता है। |
| जौली खड़ड बड़ी झयामान जी। | जौली खड़ड बड़ी मायावी है। |
| जौली खड़ड झयामान माता जी। | माता जी! जौली खड़ड बड़ी मायावी है। |
| | |
| माड़ी-माड़ी बत्त सुज्झी भीमसैन जान्दा, | छोटा-छोटा रास्ता दिखाई दिया, भीमसेन जाता है। |
| मंदर नजरी इक आया जी। | एक मंदिर दिखाई दिया। |
| मंदर नजरी गिया आई माता जी। | माता जी! मंदिर दिखाई दिया। |
| जान्दा-जान्दा परौली बिच पुज्जा, | जाता-जाता डियोढ़ी में पहुंचा, |
| अर्जण नजरी गिया आई जी। | अर्जुण दिखाई दिया। |
| अर्जण नजरी गिया आई माता जी। | माता जी अर्जुन दिखाई दिया। |
| माऊएं दिक्खी करी खड़ा ही जली गिया, | भाई को देखकर आग लग गई। |
| हड्डियां दा कारंगू रिहया जी। | हड्डियों का अस्थि पिंजर ही रह गया है। |
| हड्डियां दा कारंगू रिहया माता जी। | माता जी ! हड्डियों का पिंजर रह गया है। |
| | |
| सुत्तेया ठालणा ठीक नी समझेया, | सोया हुआ उठाना ठीक नहीं समझा, |
| मंजे जो पिट्ठ दित्ती लाई जी। | चारपाई को ही पीठ लगा दी। |
| मंजे जो पिट्ठ दित्ती लाई माता जी। | माता जी! चारपाई को ही पीठ लगा दी। |
| | |
| पिट्ठी जे पाया अर्जण घरैं पुजाया, | अर्जुन को पीठ पर लाद कर घर पहुंचा दिया। |
| माता जो दित्ता सम्हाली जी। | माता जी को सौंप दिया। |
| माता जो दित्ता सम्हाली अर्जण जी। | अर्जुन माता जी को सम्भाल दिया। |
| | |
| अर्जणे दिया हालता दिक्खी माता पछताई, | अर्जुन की अवस्था को देखकर माता पछताई। |
| नी खाणे पखरां दे मास जी। | पक्षियों का माँस नहीं खाना है। |
| नी खाणे पखरां दे मास बेटा जी। | बेटा! पक्षियों का माँस नहीं खाना है। |

tharahkardu.in

# हिमाचल में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की उद्भावनाएं

सीताराम ठाकुर
जिला भाषा अधिकारी, नाहन, हि.प्र.

डॉ. जे.सी. शर्मा जी, आज भारत के जाने माने और ख्यातिप्राप्त भाषा विज्ञानियों में से हैं। जिन्होंने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अपनी अल्प आयु में अनेक मानदण्ड स्थापित किए है। जो भारत सरकार के शिक्षा विभाग के मानव संसाधन मन्त्रालय में उपशिक्षा सलाहकार का निष्ठापूर्ण कार्य भी निभाते रहे। इस समय भारतीय भाषा संस्थान मैसूर में रीडरके पद पर रहते हुए डॉ. शर्मा भाषा के क्षेत्र में सर्जनात्मक कार्य कर रहे हैं। जिनकी भाषा की संरचना के लिए अनेक शोधात्मक पुस्तकें सामने आई है। सिरमौरी बोली के व्याकरण के निर्माण हेतु इन्होंने लगभग तीन मास सिरमौर के विभिन्न स्थानों पर जाकर सिरमौरी, जो पहाड़ी का एक रूप है, का सर्वेक्षण किया। इनके वापिस मैसूर जाने से पूर्व अकस्मात् इनसे मेरी और डॉ. गौतम की मुलाकात हुई। इनका परिचय पाते ही, इनकी श्रुतपूर्व विद्वता के कारण भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से सिरमौरी बोली की महत्ता के प्रति इनकी विचारधारा जानने के लिए उत्सुकता बढ़ी। इस बातचीत के कुछ अंश वर्णित किए जाते हैं।

**प्रश्न** : भाषा विज्ञान के नीरस होते हुए भी इसकी ओर आप की रुचि कैसे बढ़ी?

**उत्तर** : कुरुक्षेत्र में अध्ययनकाल में मैं डॉ. जगदेव सिह के सम्पर्क में आया। उनकी विद्वता भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सभी को प्रभावित करती थी। आजकल वे अमेरिका में भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत हैं। उस समय कुरुक्षेत्र में ये भाषा विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। जिनके प्रभाव में आकर मेरी भी रुचि भाषा विज्ञान की ओर पैदा हुई। शोध कार्य में ये ही मेरे मुख्य मार्गदर्शक भी रहे।

**प्रश्न** : इनके अतिरिक्त भाषा विज्ञान के क्षेत्र में किन-किन विद्वानों का सहयोग रहा?

**उत्तर** : मैंने कई ग्रीष्म कालीन स्कूल अटेंड किए। जहां प्रो. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव, प्रो. अशोक केलकर, प्रो. डी.पी. पटनायक, सुनीति कुमार चटर्जी, टी.पी. मीनाक्षी सुन्दरम्, वी.आई. सुब्रह्मण्यम्, प्रो. पी.बी. पंडित एवं डॉ. बाल गोविन्द मिश्र इन सभी ने मेरे शोध कार्य में सहयोग दिया। ये सभी मुझे भाषा विज्ञान के मूल भूत विचारों और अमूल्य योगदान से ऋणी बनाते गये।

**प्रश्न** : इसी बीच डॉ. गौतम इन्हें पूछ बैठे कि भाषा विज्ञान पाणिनि से पूर्व भी रहा होगा या नहीं?

**उत्तर** : पाणिनि से पूर्व भी भाषा विज्ञान था। पाणिनि अच्छे भाषाविद् हुए हैं। जिसके कारण उन्होंने पाणिनीय भाषा दर्शन भारत को दिया। जिसे काफी मौलिक माना जाता है। जो आज भी वैज्ञानिकता के कारण अपने में गौरवपूर्ण है। पाणिनि व्याकरण कैसे लिखा गया इसके बारे में डॉ. जगदेव सिंह, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और प्रो. कार्डोना (अमेरिकी विद्वान्) पाणिनि की व्याकरणिक विशेषताओं की खोज में प्रयासरत हैं।

**प्रश्न** : आपने फ्रांस, स्वीटजरलैंड, वैस्टजर्मनी, इटली, नाइदरलैंड आदि दस देशों का भ्रमण किया है। विदेशों में स्वभाषा के प्रति वहां के लोगों की कैसी भावना है?

**उत्तर** : हर देश की अपनी भाषा है। शिक्षा का माध्यम भी उनकी अपनी भाषा है। भारत जैसी स्थिति बहुत कम है। भारत जनमानस की भाषा में शिक्षा देने के प्रयास में है लेकिन स्थिति संतोषजनक नहीं है। क्योंकि यहां मौलिक पुस्तकों की कमी है और अध्यापकगण भी भारतीय भाषा में पूर्णतया पढ़ा पाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं। विदेशों में लोगों को अपनी भाषा पर गौरव है। उनमें अपनी भाषा के प्रति हीन भावना नहीं है। लोग सम्पर्क के लिए दूसरी भाषा सीखते हैं। उन्हें

आजीविका या शिक्षा में प्रयोग के लिए दूसरी भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती है। किन्तु हमारें देश में स्थिति दयनीय है, जहां अंग्रेजी भाषा की आवश्यकता पड़ती है। यहां मातृभाषा के माध्यम से पढ़ने वाले छात्र के लिए स्वदेश में ही नौकरी मिलना असम्भव सा है। यह मानसिकता भारतीय भाषाओं के उत्थान में घातक है। विदेशी स्वभाषा के प्रति बहुत जागरुक है।

**प्रश्न** : इस समय आप सिरमौरी बोली का भाषा विज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण एवं सर्वेक्षण करने में लग्न हैं। आप सिरमौरी को मानक हिन्दी से कितना दूर पा रहे हैं।

**उत्तर** : सिरमौरी पहाड़ी और हिन्दी दोनों ही भारतीय आर्य परिवार की भाषाएं है। जिनमें समानताएं होना भी स्वाभाविक ही है। क्योंकि इनका स्रोत सांझा है। भाषाओं के विकास विभिन्न प्रकार से हुए है। जिनके कारण विभिन्नताएं भी स्वाभाविक है। कुछ सालों से पहाड़ी प्रदेशों में हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार बढ़ा है जिससे भौगोलिक दूरियां होते हुए भी पहाड़ी भाषाओं पर हिन्दी का प्रभाव कुछ नज़र आ सकता है। मैंने थोड़े से अनुभव से यहां पाया कि काफी हिन्दी के शब्द, पहाड़ी में मूल रूप में सर्वत्र समान हैं। भिन्नता केवल उच्चारण की है। व्याकरणिक स्तर पर भिन्नताएं काफी महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी भाषी को सिरमौरी बोली के समझने में कठिनाई आती है क्योंकि यहां वाक्य में शब्द व्यवस्था में तथा शब्दों की संरचना में भिन्नताएं हैं। मुझे इस भाषा में कई रोचक तत्व दिखाई दिए। जो आधुनिक भारतीय आर्य भाषियों पर नया प्रकाश डाल सकते हैं। हमारे भाषा वैज्ञानिक साहित्य में यह संदर्भ मिलता है कि पहाड़ी भाषाओं एवं राजस्थानी भाषाओं में निकटता का संबंध है। मैंने यह पाया है कि राजस्थानी जिसमें पन्द्रहवीं सदी तक तीन लिंगों का विधान होता था। यह अब नहीं होता है। गुजराती, मराठी, भिल्ली भाषाओं में अब भी तीन लिंग हैं। उसी तरह सिरमौरी में परसर्ग का प्रयोग भी हिन्दी एवं अन्य भाषाओं से कुछ भिन्न है। हिन्दी एवं अन्य आर्य भाषाओं में सम्बन्ध कारक का संकेत ही भिन्न-भिन्न लिंग में परिवर्तित होता है। किन्तु सिरमौरी में ऐसे परसर्ग हैं जो भिन्न लिंगों में परिवर्तित होते हैं।

**प्रश्न** : सिरमौरी बोली में स्वरों एवं व्यंजनों का कार्य देवनागरी वर्णमाला से ही निभाया जा सकता है या विशेष वर्ण जोड़ने की आवश्यकता है जिससे लोक साहित्य आसानी से संगृहीत हों सके।

**उत्तर** : सिरमौरी की यह बात दूसरी पहाड़ी भाषा में भी हो सकती है। ध्वन्यात्मक अध्ययन काफी जटिल है। मैं इस विषय में फिलहाल अंतिम रूप में कुछ कहना नहीं चाहूंगा। मेरा अनुभव है कि सिरमौरी में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का उतना अंतर नहीं है जितना देवनागरी में है। किन्तु कई स्थानों पर सिरमौरी का ह्रस्व और दीर्घ स्वर बहुत ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि वह दो समान स्वरों का अमिश्रित योग कह सकता हूं। इस विषय पर अंतिम निर्णय करने से पूर्व इस भाषा की पूर्ण व्यवस्था पर विचार करना आवश्यक है। सिरमौरी पहाड़ी में अनेक स्थानों पर जहां हिन्दी का 'अ' स्वर आता है। वहां बंगलाभाषा की तरह 'ओ' स्वर का भी अधिक प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त सिरमौरी में 'ए' स्वर भी हिन्दी के ए और ऐ के मध्य का स्वर है। जिसका प्रयोग बहुत शब्दों में होता है। सिरमौरी में अकार भी देवनागरी के ह्रस्व और दीर्घ के बीच का स्वर है। सिरमौरी में कुछ ऐसे व्यंजन हैं। जो मानक हिन्दी में दुर्लभ हैं। शायद यह पहाड़ी भाषा की विशेषता है। मैं इस निष्कर्ष पर भी पहुंचा हूं कि पहाड़ी में तालव्य च, छ, ज के अतिरिक्त स्वाभाविक वर्त्स्य च, छ, ज भी है। इनके तालव्य से स्वनिमिक विरोध के पर्याप्त उदाहरण ढूंढ़ने का प्रयास कर रहा हूं। किन्तु इनके लिखने में भी कोई कठिनाई नहीं। जब भी किसी नये स्वर या व्यन्जन को लिखना हो तो वर्तमान देवनागरी स्वर व्यंजन अक्षरों को परिवर्तन करके लिखा जा सकता है। हम सिरमौरी साहित्य को देवनागरी के स्वरों और व्यन्जनों से लिपिबद्ध कर सकते हैं। किन्तु उनका, उच्चारण वही है जो मानक हिन्दी में है यह आवश्यक नहीं। देवनागरी समर्थ लिपि है जिसके माध्यम से संसार की किसी भाषा को लिपि बद्ध कर सकते हैं। लिपि केवल भाषा को एक वस्त्र ही प्रदान करती है। किसी भाषा को किसी लिपि में स्वीकार नहीं करते, उसका कारण हमारा पूर्वाग्रह है। वैसे वैज्ञानिक दृष्टि से कोई भाषा किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है। सिरमौरी में राजस्थानी की तरह मूर्धन्य पार्श्विक ध्वनियां भी हैं।

**प्रश्न** : सिरमौर काफी बड़े क्षेत्र में घिरा है, क्या यहां के लोक साहित्य को संगृहीत करते समय किसी निश्चित वर्तनी की आवश्यकता पड़ सकती है?

**उत्तर** : आप का प्रश्न उत्तम है। यह बात सभी भाषाओं में उद्भूत है। बोलचाल की भाषा में क्षेत्रीय एवं सामाजिक

भिन्नताएं होती हैं। उसी तरह से सिरमौरी में भी स्थानीय भिन्नताएं हैं। प्राय: जिस रूप में लिखित साहित्य उपलब्ध होता है। उसके छपते ही मानक रूप धारण कर लेती है। क्योंकि मनुष्य की धारणा प्राय: यह है कि वह लिखित रूप को अधिक महत्व देते हैं। किसी भी रूप में लिखित सामग्री उपलब्ध कराने से वह रूप अधिक प्रचलित हो सकता है। एक समय पर मानक रूप का स्तर धारण कर सकता है। यदि भिन्नताएं बहुत अधिक हैं और लोग इससे सचेत हैं तो अपनी ही भाषा के रूप को मानक समझने की चेष्टा कर सकते हैं। मानक रूप देने से समस्या हो सकती है। उस दृष्टि में आवश्यक रूप से यह अध्ययन किया जाए कि भाषा का कौन सा रूप अधिक प्रचलित है। इसके लिए विशेष सामाजिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता रहेगी।

**प्रश्न** : सिरमौरी छात्र भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी के अध्ययन में किन-किन त्रुटियों को कर सकता है।

**उत्तर** ; इस प्रश्न का उत्तर दने से पूर्व हमें हिन्दी और सिरमौरी का तुलनात्मक व्याकरण लिखना होगा तभी हम जान पायेंगे कि सिरमौरी बच्चों को हिन्दी के किन-किन पहलुओं पर कठिनाइयों की सम्भावना हो सकती है। ऐसे अध्ययन की अत्यावश्यकता है। इस तरह का शोध कार्य किया जा सकता है। इसके साथ वैज्ञानिक ढंग से सिरमौरी भाषी छात्रों का हिन्दी पर अध्ययन हो सकता है जिससे पता चल सकता है कि वे कहां-कहां अशुद्धियां करते हैं इनकी अशुद्धियों के कारण उनकी मुख्य रूप से उनकी मातृभाषा जो उन्हें हिन्दी के अधिगम में हस्तक्षेप करती है। ये हिमाचल के छात्रों के लिए शोधार्थ महत्वपूर्ण विषय भी है।

**प्रश्न** : राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बल के लिए पहाड़ी भाषा कहां तक समर्थ हो सकती है?

**उत्तर** : मेरी यह धारणा रही है कि कोई भी भाषा तब और समृद्ध बन जाती है जब वह दूसरी भाषा के तत्वों का आदान भी करती है। हिन्दी पहले ही समृद्ध भाषा है इसकी और समृद्धि दूसरी भारतीय भाषाओं की सहायता से बढ़ सकती है। पहाड़ी में मन: स्थिति प्रकट करने वाले अनेक शब्द हो सकते हैं जो मानक हिन्दी में न हों। यदि ऐसे शब्द हिन्दी में समाहित हो जायें। जिससे पहाड़ी भाषी को अपने विचार हिन्दी में अभिव्यक्त करने में सहजता होगी और उसका हिन्दी के प्रति और प्रेम बढ़ेगा। दूसरी भाषाओं के शब्द अधिग्रहण करने से वास्तविक रूप से हिन्दी सभी स्तरों पर स्वीकारी जाएगी।

**प्रश्न** : लोक साहित्य में मानव मंगल छिपा है आप कहां तक सहमत है?

**उत्तर** : हमारा राष्ट्र लोक साहित्य से परिपूरित है। सिरमौर और अनेक पहाड़ी क्षेत्र में लोक साहित्य सर्जन की महती आवश्यकता है। लोक साहित्य के माध्यम से यहां के लोगों के रीति रिवाज, उनकी मन: स्थिति, उनकी धारणाएं समझ सकते हैं। सर्जनात्मक साहित्य की बजाये जो साहित्य सहज ही उपलब्ध है। जो जन-जन के पास बिखरा है। उसे एकत्रित करने की आवश्यकता है। इसका अध्ययन तुलनात्मक ढग से दूसरे लोक साहित्य के सन्दर्भ में किया जाये तो हम निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। हमारे देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विभिन्न भाषाओं में मानव की अभिव्यक्ति कितनी समान है और कितने समान ढंग से सोचते हैं। इससे हमारे मानव मूल्यों का भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर पता लग सकता है। लोक साहित्य पर गूढ़ रूप से कार्य करने की महती आवश्यकता है। इसमें सर्वप्रथम मुहावरे, लोकोक्तियां, लोक कथाएं, लोक गाथाएं एवं लोक गीतों की सामग्री का संग्रह किया जाना चाहिए। नहीं तो चकाचौंध की रफ्तार में मंगलकारी साहित्य हमारे हाथों से नष्ट हो जायेगा।

# महाराजा संसारचन्द और होली

डॉ. रत्नचन्द शर्मा शास्त्री
सचिव, यशपाल साहित्य परिषद
नादौन, हमीरपुर (हि.प्र.)

मेले और त्यौहार भारतीय समाज के दर्पण हैं। हमारी संस्कृति की विस्पष्ट छाया इन्हीं में प्रतिबिम्बित है। अतीत का इतिहास, धार्मिक मान्यतायें, जातिगत एवं पारंपरिक विभिन्न विश्वास इन्हीं पर्वों के माध्यम से समाज को शाश्वत स्थायित्व तथा सतत गतिमयता प्रदान करते हैं। इन्हीं में हमारी अनेकता में एकता मुखरित हुआ करती है। कुछ त्यौहार तो अपने को एक जाति अथवा संप्रदाय की सीमा तक सीमित रखे हुए होते हैं कुछ का स्तर स्थानीय अथवा प्रादेशिक ही है, परंतु कुछेक ऐसे भी पर्व हैं जो सार्वदेशिक भावना से भावात्मक एकता की प्रतिवर्ष नूतन प्रेरणा दिया करते हैं। होलिका भी एक ऐसा त्यौहार है जो जाति, धर्म अथवा किसी संप्रदाय के बन्धन से विमुक्त अविच्छिन्न परंपरा तथा एक राष्ट्रीयता को प्रदर्शित करता ह। आबाल वृद्ध, नर-नारियां इस रंगीनपर्व के रंग में रंगे हुए पिचकारी से रंजित, सौहार्द एवं सरसता के साथ सारा मनोमालिन्य एवं अन्त: कालुष्य मार्जित करते हैं। मैत्री तथा पारस्परिक भ्रातृत्व का परिचायक रंगों की विविधता में भारत की सांस्कृतिक एकता का स्वरूप विधायक यह पर्व प्रतिवर्ष प्रत्येक गांव, गली मुहल्ले एवं नगर में राष्ट्रीय एकता का घोष करता है।

होली का नाम लेते ही हिरण्यकशिपु तथा प्रहलाद का अनायास ही स्मरण हो आता है। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के राज्य में दानवीय-अत्याचारों से यह धरा कंपित थी। चतुर्दिक् आसुरी साम्राज्य बढ़ रहा था। करूणा तथा विवेक को क्रूरता और अज्ञान की क्रूर छाया ने आच्छादित कर लिया था। देव-धर्म विरोधी आस्था का स्वच्छन्द ताण्डव नर्तन चल रहा था। सत्य की आदर्श-मर्यादाएं धूलरित हो गईं थीं। सिसकती मानवता हताश होकर निराशा के प्रलयंकारी बादलों से घिर गई थीं। ऐसी अवस्था में आसुरी शक्ति की साक्षात्-प्रतिमा हिरण्यकशिपु के घर प्रहलाद नामक दैवी शक्ति का पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। इसे सत् शक्ति ने ईश्वर व धर्म विरोधी पिता की विचारधारा का प्रबल विरोध किया। दैत्य सम्राट् ने 'आत्मा वै जायते पुत्र:' रूपं आत्मीय सद्वृत्ति के सेनियमन हेतु ही मानो उसे अनेक विध शारीरिक तथा मानसिक यातनाएं दीं। परंतु प्रहलाद पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। वह अपने मार्ग से तिल भर भी विचलित न हुआ अन्ततोगत्वा राक्षसेन्द्र ने 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी' के विचार से अपनी बहिन होलिका का सहयोग प्राप्त किया। जिसे वरदान प्राप्त था कि अग्नि की दाहकता उस पर प्रभाव नहीं डालेगी। वह प्रहलाद को अपनी गोदी में लेकर जलती चिता पर आरुढ़ हो गई। प्रहलाद के लिए ज्वलन शीतलता में बदल गई। सत्य की विजय के सामने होलिका के अमोघ वर की भी 'होली' हो गई। चिता ने उसे भस्मसात् कर दिया। ईश्वर भक्त का बाल बांका न हुआ।

आततायी के मान-मर्दन के लिए भगवान् विष्णु ने स्वयं नृसिंह का अवतार ग्रहण किया तथा दैत्य राज को अपने नखों से विदीर्ण कर यमराज का अतिथि बनाया। इस प्रकार पुण्य न पाप पर, सत्य ने असत्य पर, धर्म ने अधर्म पर तथा प्रकाश ने अंधकार पर विजय प्राप्त की। इन्हीं असत् शक्तियों को प्रोत्साहित करने वाली, पारस्परिक वैमनस्य एवं कालुष्य की प्रतिमूर्ति होलिका का प्रति वर्ष फाल्गुण पूर्णिमा को दहन होता है।

इस त्यौहार का संबंध 'नवान्न यज्ञ' से भी रहा है। चैत्र के आरंभ तथा फाल्गुणन के अन्त में नइ फसल पक्क स्थिति में होती है। भारत के कई भागों में अब भी यह प्रथा है कि 'होली दाह' की चिता में नया अन्न भूनकर उसका होलां" बना कर खाते हैं। हिमाचल प्रदेश में भी पके चनों को पौधों सहित उखाड़कर भूनते हैं तथा इस प्रक्रिया से भूने हुए इन चनों का नाम 'होलां' है। नाम शेष तथा यज्ञ परक इस वैदिक परंपरा के विस्मृत हो जाने पर 'होलां' शब्द उक्त

विशेष अर्थ में रूढ़ हुआ प्रतीत होता है।

पौराणिक परंपराओं के साथ ही इस त्यौहार से ज्योतिष की धारणाएं भी जुड़ गई। हिमाचल में फाल्गुण-शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा पर्यन्त आठ दिनों का नाम 'लोहाटक' है। इन दिनों विवाहादि मांगलिक कार्य सर्वथा वर्जित रहते हैं। संभवत: होली की मौज-मस्ती, आनन्द-विनोद की निर्विघ्न संपन्नता के लिए ही शास्त्र में ऐसा निर्देश किया गया है। 'लोहाटक' शब्द वर्ण विपर्यय से संस्कृत के 'होलाष्टक' होली के आठ दिन का ही तद्‌भव रूप है। शास्त्र में भी विपाशा, इरावती तथा सतलुज के साथ लगते क्षेत्रों में इन दिनों शुभ कृत्य को नष्ट माना गया है।

**शुक्लाष्टमीं समारम्य फाल्गुणस्य दिनाष्टकम्।**
**पूर्णिमावधिकं त्याज्यं होलाष्टकमिदं शुभे।।**
**विपाशेरावती तीरे शत द्रवाश्च त्रिपुष्करे।**
**विवाहादि शुभे नेष्टं होलिका प्राग दिनाष्टकम्।।**

ऊंच-नीच जाति तथा वर्ण के भेद-भाव को भुलाकर वर्ण-व्यवस्था की विकृत-परंपरा को तिलांजलि देना भी इस त्यौहार का मुख्य अंग माना गया है। अतएव होलिका दहन के अगले दिन चैत्र प्रतिपदा को अपने उच्चवर्ण तथा जाति के अहम् को ही भस्मसात् करने के लिए 'चाण्डाल' को गले लगा कर उसे भाई कह कर संबोधित करने की चाल है। 'प्रतिपदाया श्वपचस्पर्शं कुर्यात्।' इसी दिन पिशाच की तरह आकृति बना कर 'पिशाच क्रीड़ा' की जाती है। कुछ लोग गोबर मैलया कीचड़ आदि एक दूसरे पर फैंकते हैं। भविष्य पुराण के उल्लेख के अनुसार होलिका-भस्म, धूल, अबीर, गुलाल सिंदूर तथा कुंकुम का अपने सारे शरीर पर लेप करके गली-गली में नाचने-कूदने व मौज-मस्ती मनाने का निर्देश है :

**'प्रभाते विमले जाते ह्यङ्गे च भस्म कारयेत्।**
**सर्वाङ्गे च ललाटे च क्रीडितव्यं पिशाचवत्।**
**सिन्दूरैः कुंकुमैश्चैव धूलिभि धूंसरो भवेत्।**
**गीत-वाद्यं च नृत्यं च कुर्याद् रथ्योपसर्पणम्।।** **भविष्य पुराण।**

इस पिशाच क्रीड़ा का अर्थ पर-अपमान, परिहास, पर-पीडन नहीं होना चाहिए। जैसे कि कुछ लोग ऐसा करते हैं। शास्त्र के अनुसार पिशाच क्रीडा वह है—जिसमें औपचारिकता, भेद-भाव, ऊंच-नीच के बन्धनों से मुक्त होकर पिशाचवत् क्रीड़ा करते हैं, अपने अंगो पर कुंकुम आदि का लेप करते हैं, दूसरों पर गन्दगी नहीं फैंकते। निश्चय ही क्रूरता का ऐसा व्यवहार निन्दनीय समझा जाना चाहिए।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्राचीन काल में भी होली का त्यौहार हिन्दुओं तथा मुसलमानों का सांझापर्व रहा है। हिन्दुओं की तरह मुसलमान बादशाह भी इस उत्सव में सह भागी रहे है। 'सम्राट अकबर बहुत योग्य और सन्तवृत्ति के व्यक्ति थे। वे मानते थे—ईश्वर एक हैं। उन्होंने सब धर्मों को समान माना। होली के दिन सम्राट अकबर का महल गुलाल और सिंदूर से बिल्कुल रंगीन नजर आता था। स्वयं अकबर अपनी बेगमों तथा हरम की सुंदरियों से होली खेला करते थे। होली के दिन सम्राट हर किस्म का भेद-भाव भूल जाते थे और सबसे प्रेम-भाव के साथ गले मिलते थे।' जहांगीर तथा शाहजहां के राज्य में भी यह उत्सव सोल्लास मानाया जाता था। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के पारस्परिक सौहार्द, मैत्री एवं भ्रातृत्व का प्रतीक यह त्यौहार दोनों संप्रदायों में समान रूप में मान्य है। अन्त: कालुष्य को धोने वाले इस पर्व पर नज़ीर साहब तभी तो यूं फरमाते हैं :—

**'मियां तू हमसे न रख कुछ गुब्बार होली में,**
**कि रूठे मिलते हैं, आपस में यार होली में,**
**मची है रंग की कैसी बहार होली में**
**हुआ है जोरे चमन आशकार होली में।**
**अजब ये हिन्द की देखी बहार होली में।''**

हिमाचल प्रदेश में देश के अन्य भागों की तरह ही यह उत्सव मनाया जाता है। यहां भी रंग फैंकना, गुलाल मलना,

पुन: गले मिलना तथा पिशाच-क्रीड़ा का विकृत रूप गोबर-घोल फैंकना आदि नाना रूपों में होली खेली जाती है। परंतु प्रजा-रंजक महाराजा संसार चन्द (१९७५-१८२३) के शासनकाल में होलिकोत्सव को जो अभिमान तथा प्रश्रय मिला वह हिमाचल के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखता है। वे न केवल कलानुरागी-कला पारखी, सहृदय ही थे अपितु उच्च कोटि के कलाविद रसिक हृदय भी थे। यही कारण है कि प्रजा-वत्सल महाराजा प्रिय प्रजाजनों के संग उन्मुक्त रूप में होली खेला करते थे। उनके द्वारा यह एक स्वस्थ परंपरा का सूत्रपात था। इस होली-क्रीड़ा में सामान्य जन भी सोत्साह, प्रेम पूर्वक स्वच्छन्द-भाव से अबीर, गुलाल तथा अनेक विध रंगों के मिश्रण से भरी पिचकारी से होली खेलता था। उस समय अद्‌भुत छटा बिखेरता हुआ वासन्ती दृश्य उपस्थित होता था। होली-क्रीड़ा का समस्त व्यय राज कोष से ही किया जाता था। विविध रंगों को बारादरी के प्रांगण में निर्मित तालाब में इकट्ठा करके विशेष चातुरी से घोला जाता था। पिचकारी में भरकर जब उस रंग को फैंका जाता तो उस रंग के अनेक रंगों में परिवर्तन का एक वैशिष्ट्य होता था। तीन चार दिनों तक यह क्रम चलता रहता था।

सुजानपुर टीहरा के विशाल चौगान में महाराजा संसार चन्द के बाद यहाँ के प्रबुद्ध नगर निवासियों के प्रयत्न व सहयोग से सदियाँ बीत जाने पर भी 'सुजानपुर की होली' मेला चलता रहा। इन्होंने महाराजा की प्रजा वत्सलता तथा समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा को सजीव बनाए रखा। होली मेले के साथ झांकियों को भी सम्मिलित किया गया। जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के कारण ही संभवत: इन झांकियों का नाम स्थानीय भाषा में 'ध्यान' है। पौराणिक आख्यानों से संबद्ध अवतारों, देवी-देवताओं पर आधारित ये 'ध्यान' सुजानपुर के ऊपर तथा नीचे वाले बाजारों से पृथक-पृथक् रूप में दर्शकों के दर्शनार्थ निकाले जाते हैं। जिन्हें बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से देखा जाता है।

सुजानपुर का होलिकोत्सव महाराजा संसार चन्द की कलात्मक योग्यता, दृष्टिकोण की व्यापकता तथा प्रशासनिक कुशलता का भी एक अनूठा उदाहरण है। होली के माध्यम से हमें उनकी प्रजा-रंजकता का परिचय मिलता है। उन्होंने होली-क्रीड़ा के उच्चादर्शों तथा समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को जो प्रश्रय दिया है वह स्वर्णिम अक्षरों में अंकित रहेगा। हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा 'सुजानपुर की होली' को राज्यस्तरीय मेला घोषित करने से महाराज संसार चन्द तथा राष्ट्रीयपर्व होली दोनों की स्मृति तथा परंपराएं शाश्वत बनी रहेंगी। यह एक सर्वजनस्तुत्य कदम है। सरकार के सहयोग से संपन्न होने वाले शास्त्रीय संगीत, कवि गोष्ठी तथा विविध प्रदर्शनियों के आयोजनों से सुजानपुर का चौगान होली के दिनों में भारतीय संस्कृति का एक बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करता है। मेले में मिलन तथा पारस्परिक मेल मैलाप से प्रेम अनेकता में एकता का होली का संदेश सारे चौगान को गुंजित कर देता है। यह ऐतिहासिक स्थल ढोल की तान पर अपनी बुराइयों को होली की अग्नि में भस्म करने तथा धर्म, जाति, संप्रदाय तथा भाषागत कलह, वैमनस्य को भूलने की प्रेरणा देता है। यह राष्ट्रीय पर्व राष्ट्रीय एकता, विकास तथा समृद्धि हेतु इस वेदमंत्र की पुनरावृत्ति करता है।

**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।।**
**प्रेम से मिलकर चलो, बोलो, सभी ज्ञानी बनो।**
**पूर्वजों की भांति सब कर्त्तव्य के मानी बनो।।**


## साहित्यकार कलाकार विवरणिका (सचित्र)

हिमाचल अकादमी द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में हिमाचल प्रदेश के साहित्यकारों, कलाकारों के संक्षिप्त जीवनवृत्त के साथ उनके द्वारा विरचित साहित्य का परिचयात्मक विवरण उपलब्ध है।
मूल्य ३०/- तीस रुपये मात्र

सचिव, हिमाचल, अकादमी

# हिमाचल की सांस्कृतिक मान्यताओं में भूत-प्रेत

रतनलाल चौधरी
राजकीय मुद्रणालय घोड़ा चौकी, शिमला

हिमाचल प्रदेश को देवभूमि के रूप में माना जाता है। जहां देवता वास करते हैं वहां पर भूतों, प्रेतों, पिशाचों का वर्णन भी हमारी धार्मिक पुस्तकों एवं लोक मान्यताओं में मिलता है। इन बदरुहों से देवता छुटकारा दिलाते हैं। इसीलिए हम देवताओं को श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक मानते हैं। उनकी पूजा-अर्चना करते हैं और सुरक्षा अनुभव करते हैं। यदि इन बदरुहों और पिशाचों का डर मानव को न हो तो सम्भवत: वह देवताओं को भूल जाएं। यह भूत पिशाच अनेक नामों से जन-मानस में प्रसिद्ध है।

## अधमसानियां

अधमसानियां के बारे में सुना जाता है कि यह बिना सिर का होता है। रंग काला और शरीर सशक्त होता है। यह पीपल या सेमल के पेड़ पर वास करता है। कहीं-कहीं किसी खण्डहर के पास भी इसकी उपस्थिति की बातें सुनी जाती हैं। आधी रात के समय इसके वास के पास यदि कोई जाए तो वह उस आदमी को मरोड़ देता है। कहते हैं कि यह बहुत ही शक्तिशाली होता है। इसका मरोड़ा हुआ व्यक्ति कठिनता से ही बच पाता है। छोटे-मोटे चेले डाऊ इसके समीप नहीं जाते। इसको मनाने के लिए मुर्गे या भेड़े की बली दी जाती है तथा अनेक प्रकार के पकवानों से युक्त इसे 'भक्ख' दिया जाता है भक्ख से अभिप्राय भक्षण से है। यदि इसे 'भक्ख' देने में कोई चूक रह जाए तो चेले या डाऊ की शामत आ जाती है। इसका मरोड़ा हुआ व्यक्ति तेज बुखार से ग्रस्त हो जाता है उसका रंग काला पड़ जाता है। वह बेहोशी की हालत में उटपटांग बकने लगता है। अचानक उठकर बाहर को भागने लगता है। उस समय उसमें इतनी शक्ति होती है कि दो चार हट्टे-कट्टे आदमी भी उस पर काबू पाने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि किसी देवता का नाम उसके सामने लिया जाए तो वह और व्याकुल होकर उछल-कूद मचाता है। ईलाज हो जाने पर वह निश्चल सा हो जाता है। और कभी-कभी दिमागी तौर पर कुछ क्षीण भी हो जाता है।

## छहापड़ा

कहते हैं कि छहापड़ा धवल वस्त्र पहने रहता है। यह अन्धेरी रातों में यदा-कदा रास्ते में किसी राही को मिल जाता है। कभी-कभी यह दूर तक उस राही के आगे-पीछे चलता रहता है। एक क्षण में यह राही के आगे होता है तो दूसरे ही क्षण वह पीछे चलने लगता है। कभी-कभी यह इतना लम्बा दीखता है कि आसमान को छू रहा हो। कभी-कभी सामान्य दिखने लगता है। कभी-कभी यह राही के रास्ते में आर-पार लेट जाता है और कहता कि 'भाई मैं बीमार हूं मुझसे हिला भी नहीं जा रहा है। इस चादर को मेरे ऊपर सिर से पैर तक ओढ़ा दो।' राही जब चादर ओढ़ाने लगता है तो कभी चादर सिर की ओर छोटी पड़ जाती है तो कभी पैर की ओर से छोटी पड़ जाती है। राही इसी क्रिया में लगा रह जाता है। कहते हैं कि उस समय यदि राही के पास कोई हथियार हो तो वह यह कहे कि तेरी बढ़ी हुई टांगों को काट कर चादर ओढ़ा देता हूं तो यह रास्ता छोड़ देता है। वैसे कहते हैं कि यह आदमी को केवल डराता है कोई विशेष हानि नहीं पहुंचाता है।यह बस्ती से दूर रहता है।

## सोमसी



tharahkardu.in

## चुड़ैल

कहते हैं कि चुड़ैल बहुत ही शक्तिशाली 'छल' है। कोई स्त्री यदि प्रथम प्रसूति के तुरन्त बाद मर जाए और उसका जीवित बच्चा घर में रह जाए तो वह स्त्री चुड़ैल बन जाती है। प्रसूति के कारण उसका क्रियाकर्म निष्फल हो जाता है। उसकी ममता हिलोरें मारने लगती है उसकी आत्मा का मोक्ष नहीं होता अत: वह बार-बार अपने बच्चे को प्राप्त करने को दौड़ती है। चेले-डाऊ अपने तन्त्र-मन्त्र से उसके रास्ते का कार द्वारा अवरोधन कर देते हैं। फलस्वरूप वह स्त्री श्मशान घाट से अपने घर के रास्ते में भटकती फिरती है।

कभी-कभी सायं काल होते ही यह अकेले-दुकेले व्यक्ति को अपने बाल संवारते या 'चीडें' किलकारियां मारती हुई मिल जाती है। इसके बाल खुले, बड़े-बड़े स्तन तथा पैर उल्टे होते हैं। यह इसकी विशेष पहचान है। यदि कोई व्यक्ति इसकी चपेट में आ जाए तो उस व्यक्ति का जीवित बच पाना कठिन हो जाता है। चेले तथा डाऊ उस व्यक्ति का इलाज करते हैं। श्मशान घाट उनकी पूजा का स्थल होता है तथा वहां पर ही इसके लिए भक्षण दिया जाता है। कभी-कभी यह किसी कुंवारे एवं सुंदर स्वस्थ युवक को अति सुंदर रूप में मिल कर उसे मोहित करने का प्रयास करती है। यह रात्रि में उस युवक के साथ हमबिस्तर हो जाती है। धीरे-धीरे वह युवक क्षीण होता जाता है और अन्तत: उसकी मृत्यु हो जाती है अर्थात् चुड़ैल उस युवक को अपने साथ ही ले जाती है ऐसा किंवदन्तियों द्वारा ज्ञात होता है।

## बताल

बताल के बारे में जनसाधारण का कहना है कि यह पानी में रहता है। सुंदर एवं नवविवाहित युवतियां इसका शिकार बनती हैं। नदियों, खड्डों में बनी झीलें एवं पोखर इसका निवास स्थान होता है। यदि कोई नवविवाहिता अकेली-दुकेली इसके निवास स्थान पर जाए तो यह उस युवती से चिपट जाता है। कई युवतियां पागलों की तरह पानी की ओर दौड़ती हैं और यदि उसे उस समय पकड़ा न जाए तो वह गहरे पानी में छलांग लगाकर अपना प्राणान्त कर लेती है। यह सुप्तावस्था में उस युवती से सहवास करता है। उसे डरावने स्वप्न आने लगते हैं। उससे होने वाली संतान कुरूप, विकराल होती है। जन्म के समय ही उसके दांत उगे होते हैं शरीर पर बाल होते हैं और वह पैदा होते ही साल भर के बच्चे के समान हाथों एवं चार घुटनों के सहारे चलने लगता है। कभी-कभी उसे देख कर दाइयाँ बेहोश हो जाती है। इस बच्चे को बताल कहा जाता है। यह लड़के के रूप में ही पैदा होते ही दफना दिया जाता है। बताल कभी-कभी मछली पकड़ने वाले लोगों को भी मिल जाता है। यह बड़ी मछली बन कर उनके सामने पानी में विचरण करने लगता है परंतु शिकारियों के हाथ यह मछली लाख प्रयास करने पर भी नहीं लगती। पुरुषों को यह वैसे ही डराता या खेलाता है कोई विशेष हानि नहीं करता है।

## नाहरसिंघ

नाहरसिंघ का शिकार भी सुन्दर नवविवाहिता युवतियां ही होती हैं। यह जब किसी नवविवाहिता युवती पर मोहित होता है तो वह युवती अपने पति से हमबिस्तर होना पसन्द नहीं करती। सुप्तावस्था में यह उस युवती से सहवास करता है। उसे डरावने स्वप्न आते हैं और उस युवती के संतान उत्पन्न नहीं होती या उसका गर्भ गिर जाता है। कभी-कभी यह बड़ी आयु की कुंआरी युवतियों से भी चिपट जाता है। यह लाल कपड़ो को पसंद करता है। इसका इलाज भी श्मशान घाट पर ही किया जाता है बाकायदा तौर पर उस युवती को सात फेरे लेने पड़ते हैं। तभी निदान संभव है। चेले तथा डाऊ इसे श्मशान घाट पर 'कार' बांध कर रोक देते हैं। इस प्रकार उस युवती को छुटकारा मिल जाता है। कई युवतियाँ इसकी बाकायदा पूजा करती हैं।

## परियाँ

परियां जन्मजात होती हैं। ये छोटी-छोटी बच्चियों को लग जाती है। कहते हैं कि ये कई जातियों की होती हैं। इनकी बाकायदा पूजा एवं विशेष प्रकार के अनुष्ठानों का आयोजन किया जाता है। यदि इनकी पूजा अर्जना न की जाए तभी यह हानि पहुंचाती हैं अन्यथा नहीं। बच्ची से युवती होने पर जब उसकी शादी की जाती है तो गुड़िया बना कर उनकी पूजा की जाती है। यदि माँ को परियां हो तो उसकी बच्ची को भी यह लग जाती हैं। ऐसा किंवदंतियों द्वारा ज्ञात होता है।

## पहाड़िया

पहाड़िया बदरुह तो नहीं है फिर भी यह दूसरों की हानि तब करता है जब वह नाराज हो जाए। यह गद्दी के भेष में होता है इसके एक हाथ में लाठी दूसरे में 'नरेलू' (नारियल) से बनाया गया विशेष प्रकार का हुक्का) होता है। पीठ पर 'किरड़ू' किरटा होता है यह वादियों में रहना ही पसंद करता है। जिस घर में इसकी पूजा अर्चना होती है उस घर में अनाज व धन की कोई कमी नहीं होती है। परंतु जिस घर में इसकी पूजा नहीं होती तो उस घर की बरकत जाती रहती है।अनाज और धन की हानि होती है। कहते हैं कि जो इसे मानता है उसके घर में वह अपने किरटे में दूसरे घरों से अनाज भर कर ले आता है। इस प्रकार उसके घर में अनाज की कोई कमी नहीं होती। जिस घर में इसकी पूजा होती है उस घर में उसके नाम से मेड्डू या मुर्गा पाला जाता है। विशेष अवसरों पर इसके नाम से उस मेड़े या मुर्गे पर फूल अक्षत चढ़ा कर 'विजेरते' हैं। विजने से अभिप्राय पीठ झाड़ने से है। जब तक वह पीठ झाड़ नहीं लेता तब तक परिवार के सभी लोग हाथ जोड़े उस मेड़े या मुर्गे को घेरे खड़े रहते हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य द्वारा उस पर फूल तथा अक्षत चढ़ाए जाते हैं। यदि परिवार का कोई सदस्य दूर गया हो तो उसका नाम लेकर दूसरा सदस्य फूल चढ़ाता है। यदि मेड़ा या मुर्गा पीठ झाड़ने में देरी करता है तो यही समझा जाता है कि कोई न कोई चूक अभी बाकी है। कभी-कभी यह किसी व्यक्ति को अपनी चपेट में ले लेता है। आदमी बीमार रहने लगता है दवाई का असर उस पर नहीं होता है। ऐसी हालत में चेले तथा डाऊ का ही सहारा लेना पड़ता है। उसे मना कर रोगी ठीक हो जाता है।

## जलधीर

जलधीर प्राय: चारागाहों या वीरान स्थानों में देखे जाते हैं। इनके बारे में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। परंतु इन्हें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह चारागाहों में अन्धेरा होने पर एक जलती हुई मशाल लेकर नाचते हैं। पहले एक मशाल फिर दो फिर इनकी संख्या बढ़ती ही चली जाती है। यह मसालें लिए हुए दूर-दूर तक घूमते हैं और मसालों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। धीरे-धीरे यह रोशनियां समाप्त हो जाती हैं। वैज्ञानिक इस रोशनी को फासफोरस मानते हैं। परंतु यदि यह फासफोरस की रोशनी होती तो यह दूर से ही क्यों दिखाई देती है समीप से यह दिखाई नहीं देती। अर्थात जहाँ रोशनी दिखाई दे रही हो तो यदि वहां तुरंत पहुंचा जाए तो यह रोशनियां वहां पर दिखाई नहीं पड़ती जबकि दूर खड़े लोग इन रोशनियों को देख सकते हैं। किंवदंतियों के अनुसार जलधीरों ने एक टोपी पहनी होती है यह अपनी-अपनी टोपियां उतार कर एक स्थान पर रख देते हैं। और मशाल जला कर नाचने लगते हैं। यदि चतुराई से इनकी टोपी चुरा ली जाए तो वह जलधीर आजीवन उस व्यक्ति का सेवक बन जाता है और उस व्यक्ति के लिए लौकिक और आलौकिक कार्य करता है। वह अपनी टोपी पाने की याचना बार-बार करता रहता है। टोपी देने के बहाने व्यक्ति उससे अनेक कार्य सिद्ध करता रहता है।

## भूतनियां

भूतनियां का वर्णन भी अनेक किंवदंतियों में आता है। यह आधी रात या दोपहर को इधर-उधर घूमती फिरती है। चेले तथा डाऊ इन्हें प्रसन्न करके अपने वश में कर लेते हैं। यह भूतनियां ही चेले तथा डाऊओं को लौकिक तथा

पारलौकिक जानकारियां देती हैं। ये उनकी पूरी-पूरी सहायता करती हैं ये भूतनियां ही इनकी शक्ति का स्रोत हैं। चेले तथा डाऊ इन्हें माता या शक्ति कहते हैं, परंतु शक्ति आज तक किसी के वश में नहीं हुई। यहां तक त्रिपुरारी भी इससे हार मान गए थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी समय-समय पर शक्ति की मदद की आवश्यकता पड़ती रही है परंतु किसी के वश में नहीं हो सकी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी संस्कृति में जहां देवताओं का स्थान है वहां पर भूत-प्रेत-पिशाचों का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाता है। जहां भूत-प्रेत हमें हानि पहुंचाते हैं वहां ही देवता हमारी रक्षा करते हैं इसलिए देवताओं का महत्व और भी बढ़ जाता है। अलग-अलग स्थानों पर इन भूतों के अलग नाम हो सकते हैं परंतु इनके कार्यकलाप एक समान ही कहे जाते हैं। इसे हमारे अंधविश्वास कहिए या कुछ और परंतु बड़े-बूढ़े इन भूतों का अस्तित्व मानते हैं। और विशेषकर ग्रामीण जनता में तो यह धारणा शत प्रतिशत प्रचलित है और वे कभी भी इसे अंधविश्वास मानने को तैयार नहीं होते। वे इस मामले में स्वयं को भुक्तभोगी मानते हैं।

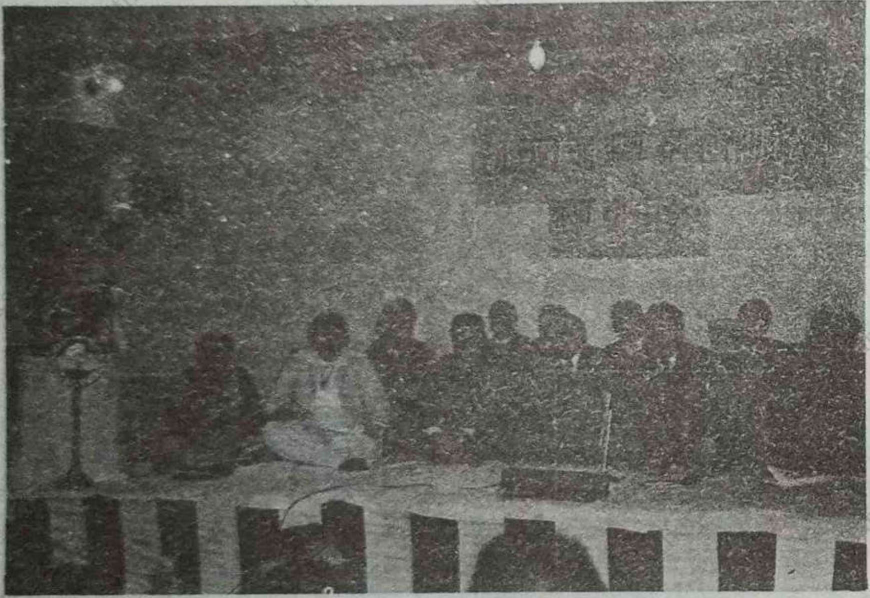

स्व० लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह के अवसर पर आयोजित कविसम्मेलन में कविता-पाठ करते हुए "जयदेव किरण"। समारोह के अध्यक्ष प्रो० नारायण चन्द पराशर व संयोजक डॉ० बंशीराम शर्मा

# विवाह गीत: सांस्कृतिक विरासत का प्रवाह

राजकुमार राकेश
क्षेत्रीय प्रबन्धक
हि.प्र. राज्य आपूर्ति निगम, मण्डी

मनुस्मृति में वेदों और स्मृति के विधान से गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ माना गया है। यह अन्य तीन आश्रमों का पालन करता है। :

**सर्वेषामपि चैतेषां वेद स्मृति विधानतः।**
**गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स्त्रीनेतान् बिभर्तिहि ।**

विवाह सहस्रों वर्षों के मानव विकास में महत्वपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। सृष्टि के आदि प्रथम पुरुष एवं स्त्री काम तृप्ति के लिए परस्पर आकृष्ट हुए होंगे जिसका फल सन्तानोत्पत्ति में हुआ। सामाजिक व्यवस्था के निर्धारण के साथ विवाह का आयोजन कर काम-तृप्ति को सभ्यता का जामा पहनाया गया।

वैदिक संस्कृति में मनुष्य को अपने जीवन काल में तीन कारणों से उऋण होना अनिवार्य माना गया है। यह तीन ऋण हैं— पितृ ऋण, सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति एवं स्त्री-पुरुष के समन्वय से पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना तथा काम-वासनाओं की तृप्ति में पशुता का त्याग।

पुराण एवं स्मृति जैसे आदि ग्रंथों में विवाह के मूल आठ रूप स्वीकारे गए है :— ब्राह्म, प्रजापत्य, दैव, आर्ष, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच।

ब्राह्म-विवाह में विद्वान, शीलवान व सच्चरित्र वर को आमंत्रित करके, कन्या को अन्न, वस्त्र व आभूषणों से अंलकृत कर वर को पाणिग्रहण करवा कर कन्यादान दिया जाता है। प्राजापत्य में भी वर की विधिवत पूजा करके दोनों वर-वधु को गृहस्थ धर्म आचरण की शिक्षा देकर अंगीकृत किया जाता है। ब्राह्म एवं प्राजापत्य विवाह पद्धतियों में अधिक अन्तर नहीं है।

देव विवाह में जो व्यक्ति यज्ञ क्रिया में पुरोहित के कार्य को उचित ढंग से पूरा करता था उसे ही वस्त्र व अलंकारों से आभूषित कन्या का दान कर दिया जाता था। आर्ष विवाह का संबंध सिर्फ ऋषियों से था। सामान्यजन आर्य विवाह की पद्धति नहीं अपना सकते थे।

आसुर विवाह में स्त्री का मूल्य निर्धारण होता था। विवाह का इच्छुक व्यक्ति अपनी मर्जी से कन्या के परिवारजनों को समुचित धन देकर विवाह करता है।

गांधर्व विवाह प्रेम विवाह है। कन्या व वर के परस्पर प्रेम के फलस्वरूप जो विवाह होता है उसे गांधर्व विवाह कहते हैं। 'काम-सूत्र' इस प्रकार के विवाह को आदर्श मानता है।

राक्षस-विवाह में विजेता-पक्ष द्वारा विजितपक्ष की कन्याओं को जबरदस्ती ले जाने की प्रथा है। पैशाच विवाह निकृष्ट माना गया है। इसमें निद्रा-निमग्न, मदयपान-विहल या नशे में उन्मत्त स्त्री के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करके उसे अपनाया जाता है।

हिमाचल प्रदेश में मुख्यतः ब्राह्म, प्राजापत्य, गांधर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच रीति के विवाहों का क्षेत्रीय उपादेयता के अनुसार कम या अधिक प्रचलन है। दैव और आर्ष विवाहों का प्रचलन देवयुग में रहा हो, मगर अब नहीं है। प्रचलित विवाहों के नाम क्षेत्रीय संदर्भों में विभिन्न हो सकते हैं पर आमतौर पर जिस व्याह-पद्धति का प्रमुख प्रचलन है



tharahkardu.in

उसे ब्राह्म विवाह का स्थानीय रूप ही मानना होगा। किन्नौर में अनेकड़ तथा नोटिड़ फीरड़ (द्रोपदी विवाह) एवं लाहौल स्पिति में मोड व क्वाची आदि विवाह पद्धतियां भी ब्राह्म-विवाह का ही रूप हैं।

दो रोशा-डबडब तथा दम-चलशिश गांधर्व विवाह पद्धतियां हैं। द्वार, बरीणा, ढेरी, रीत व सट्टा-बट्टा आदि आसुर विवाह पद्धतियों के अन्तर्गत आते हैं।

अन्तर्जातीय विवाह, पुनर्विवाह व विधवा विवाह गांधर्व विवाह का बिगड़ा हुआ रूप है। इसमें झंझराडा, घर करना, बैठणा, करेवा, रंडोल, बंधलु आणा, चादर-पाणी, मदखूईया व सरीत आदि प्रचलित पद्धतियां गिनी जा सकती हैं। पांगी में विधवा-विवाह को 'टोपी लाणा' कहते हैं।

**ब्राह्म-विवाह (ब्याह) :**

विवाह का यह रूप प्रदेश के अधिकांश भागों में तथा अधिकांश जाति व वर्गों में प्रचलित है।

वर एवं वधु पक्ष के बीच संबंध स्थापित करने के लिए कोई बिचौलिया काम करता है। इसे रबारु या रबारा कहते हैं। पहले तो यह प्रायः कुलपुरोहित अथवा नाई हुआ करता था मगर अब सगे-संबंधी इस कार्य में हाथ बंटाने लगे हैं। प्रायः स्त्रियां भी रबारन का कार्य करने लगी हैं।

जब दोनों पक्ष संबंध स्थापित करने पर राजी हो जाएं तो कुल-पुरोहित द्वारा वर-वधु की जन्म पत्रियों में ग्रह-गोचर एवं गुणों का मिलान किया जाता है। जन्मपत्रियां मिल जाने पर प्रायः संबंध को पक्का मान लिया जाता है। इसी रोज़ 'कुड़माई' की तारीख निश्चित कर ली जाती है।

कुड़माई वाले दिन वधु पक्ष पुरोहित के हाथ वरपक्ष के घर वर व उसके सगे संबंधियों के लिए कपड़े आदि तथा मिठाई भेजते हैं। पहले गांवों में गुड़ भेजने का बहुत रिवाज़ था। इसे 'टीका' कहा जाता है। वर पक्ष के घर में पूजा-पाठ के बाद वर को पुरोहित कंगना बांध कर विवाह की तारीख तय करते हैं। तब दोनों पक्षों के कुल-पुरोहित 'लगणोत्तरी' लिखते हैं जिसमें ब्याह के पूरे कार्यक्रम का समयानुसार व दिनांक के हिसाब से मुहूर्त्त का ब्योरा होता है। प्रायः वर-पक्ष वाले भी इसी रोज़ वधु के लिए कपड़ों का जोड़ा तथा मिठाई, उनके कुल पुरोहित के हाथ से भेज देते हैं। दोनों पक्षों को लिखित 'लगणोत्तरी दे दी जाती है।

लग्नोत्तरी के हिसाब से विवाह आरंभ हो जाता है। घरों की खूब सजावट-बनावट होती है। पुरोहित घर के एक बड़े कमरे में कुम्भ की स्थापना करता है। दोनों पक्षों में कुम्भ के सामने कुल-नाईन कलात्मक रूप में 'कणदेओ' चित्रित करती है जिसके बीचोंबीच दुल्हा-दुल्हन की पालकियां सजी होती हैं। कुम्भ के पास एक बड़ी चौकी पर पुरोहित रंगीन आटे से नवग्रह व देवताओं की चित्रकारी करता है। इसके ऊपर यथा स्थान देवता अपना आसन ग्रहण करते हैं। इसे चौका कहते हैं। फिर गणपति की स्थापना इस चौकी पर की जाती है। इस अवसर को 'समूहत्त' (शुभ मुहूर्त गणपति स्थापना) कहते हैं। इस अवसर पर अपने-अपने घरों में तथा अपने-अपने चौके में वर व वधु को 'बटणा' मला जाता है। पहला बटणा प्रायः कुआंरी कन्या द्वारा मला जाता है। इस संस्कार के साथ ही विवाह आरंभ हो जाता है। फिर अपने-अपने मुहूर्तानुसार सांद, मंजरौली, तेल, स्योल, विरडी, बज्वात्रा, तमोल, बारात, लगन, विदाई अन्दरेरा व पंडजणी आदि की रस्में निभाई जाती है।

इसी विवाह पद्धति का रूप किन्नौर में अनेकड़ और नोटिड़-फीरड़ तथा लाहौल-स्पिति में 'मोड' तथा 'क्वाची' आदि विवाहों में देखा जा सकता है। लाहौल क्षेत्र को छोड़ बाकी स्थानों पर वर-वधु प्रायः पालकियों में जाते हैं। किन्नौर का द्रोपदी विवाह भी इसी परंपरा की एक कड़ी है। इसमें गृह-प्रवेश के समय वधु का दायां-हाथ पति के सभी भाइयों के हाथ में दिया जाता है। इसका अर्थ है सभी भाइयों के साथ उसका विवाह। इसे बहुपति प्रथा कहा जाता है।

**गांधर्व-विवाह :**

लड़के व लड़की के परस्पर प्रेम का विवाह में बदलना गांधर्व विवाह कहलाता है। आधुनिक संदर्भों में होने वाली 'लव-मैरिज़' गांधर्व विवाह का ही आधुनिकतम रूप है। कुछ विशेष परिक्षेत्रों को छोड़कर प्रेम-विवाह का अधिक

प्रचलन हिमाचल प्रदेश में नहीं है।

इस प्रकार के विवाहों में किन्नौर के दोरोशा-डबडब, दम चलशिश ही प्रमुख माने जा सकते हैं। तनिक अपवादों के साथ विधवा-विवाह व पुनर्विवाह पद्धतियां भी इनमें गिनी जा सकती हैं जैसे झझंराडा, घर करना, बैठणा, करेवा, रंडोल, बंधलुआणा, चादर-पाणी, मद-खुईयासरीत आदि। पांगी में प्रचलित 'टोपी-लाणा' भी कुछ-कुछ इस पद्धति से मिलता है।

'दोरोशा-डबडब' पूर्णरुपेण प्रेम-विवाह भी नहीं है परंतु इसमें एक तरफा प्रेम का होना तो अनिवार्य है ही। यह एक आदिम प्रथा है। मेले आदि में जिस लड़की को कोई लड़का छू ले तो लड़का उसका पति हो जाता है। लड़के के साथी उसे जबरन घसीट कर घर ले जाते हैं। उसे छुड़ाने की कोई प्रथा नहीं है। फिर देवता को इजित भेंट कर विवाह पूर्ण माना जाता है। इजित में 'घंटी' की बोतल तथा पांच रुपए लड़की माता-पिता को भेंट किए जाते हैं। 'दम-चलशिश' में लड़का लड़की परस्पर प्रेम के कारण घर से भाग जाते हैं। बाद में घर वाले 'इजित' लेकर उनकी शादी करवा देते हैं।

झझंराडा में स्त्री किसी और पुरुष के घर बैठ जाती है। वह प्रायः विधवा होती है। घर करनां, बैठणा, करेवा आदि भी कुछ मिलती-जुलती प्रथाएं हैं पर आवश्यक नहीं कि स्त्री विधवा ही हो। सिर्फ 'रंडोल' में यह शर्त जरुरी है। चादर परणी या बंधलुआणा लगभग एक ही प्रथा है। इसमें विधवा औरत अपने देवर के घर बैठ जाती है। मदरखुईया या सरीत में ऊंची जाति का पुरुष निम्न जाति की स्त्री से ब्याह कर लेता है। पांगी क्षेत्र में विधवा स्त्री से विवाह करने की प्रथा को 'टोपी-लाणा' कहते हैं। इसे विवाह का घटिया रूप माना जाता है। कई क्षेत्रों में 'हार' की पद्धति है जो किन्नौर के 'दोरोशा-डबडब से मिलती हैं।

**आसुर-विवाह :**

इस प्रकार के विवाह में स्त्री का मूल्य डाला जाता है। वधु पक्ष वाले वर-पक्ष से निश्चित तय की हुई राशि लेकर विवाह कर देने पर राज़ी हो जाते हैं। मंडी में इसे 'बरीणा' कहते हैं। गुज्जरों में यह प्रथा 'हरजाना' कहलाती है। सिर्फ हरजाना देने भर के बाद वे एक दूसरे की स्त्री तक को ले जा सकते हैं। ढेरी, रीत, रुश आदि भी बरीणा या हरजाना का ही रूप हैं। कई स्थानों पर इसे 'इज्जत' कहा जाता है किन्नौर में इजित का रूप इससे भिन्न है। इजत रुपयों में आंकी जाती है, इजित सिर्फ एक 'घंटी' की बोतल और पाँच रुपए होती है।

'सट्टे-बट्टे' की प्रथा भी बहु प्रचलित थी। एक परिवार के लड़का दूसरे परिवार की लड़की से और दूसरे परिवार का लड़का पहले परिवार की लड़की से शादी कर ले तो यह सट्टा-बट्टा कहलाता है। यह प्रथा अभी भी चम्बा के गद्दियों में काफी प्रचलित है।

इन प्रमुख विवाह पद्धतियों के होते हुए भी प्रदेश में मुख्यतः ब्राह्म-विवाह ही प्रचलित है। इसे सिर्फ 'ब्याह' कहते हैं। इसके शुभ मुहूर्त्तों पर गाए जाने वाले विशिष्ट लोकगीत हैं जिनको अपने विशिष्ट संदर्भों में उकेरने का प्रयास किया गया है।

जब तक दोनों वर-वधु लग्न मंडप में इकट्ठे नहीं हो जाते विवाह संस्कार अलग-अलग अपने घरों में क्रियान्वित होते हैं। वे प्रायः दोनों ओर एक जैसे हैं। चौका, समूहत, सांद, विरड़ी तेल आदि। वरपक्ष की ओर बज्यात्रा और वारात का प्रस्थान निश्चित ही वधु पक्ष की ओर नहीं होता, हो भी नहीं सकता। वर पक्ष में गाए जाने वाले मंगल गीतों को 'घोड़ी' कहते हैं। निश्चय ही यह 'घोड़ी चढ़ने' की परपंरा से जुड़ा हुआ है। वधु-पक्ष की ओर के मंगल-गीतों को 'सुहाग' कहा जाता है। शेष गीत लगभग दोनों ओर ही गाए जाते हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार ही वर-पक्षीय गीत हर्षोल्लास के द्योतक हैं तथा वधुपक्षीय गीत उदासी व विदाई के। चुहल बाजी दोनों ओर से होती है। उन्हें 'गाली-गीत' या सिर्फ गाली कहा जाता है।

विवाह-गीतों के दो पक्ष हैं:—कला-पक्ष एवं चेतनापक्ष । कलात्मकता में उनकी गुणवत्ता एवं समयानुसरिता

प्रमुख हैं। चेतना में सम-समयिकता के प्रति उनका रुझान तथा समाज व व्यक्ति का हित निहित होता है।

विवाह-संस्कारों को पूर्ण करवाने के लिए तीन व्यक्ति महत्वपूर्ण होते हैं। प्रथम पुरोहित, जो विधि व धर्म-विधान के अनुसार मन्त्रोच्चारण द्वारा विवाह-संस्कार को पूर्णता की ओर ले जाता है। द्वितीय है नाई, जो पुरोहित के पी.ए. का कार्य करता है। नाई व उसकी नायन विधानों को कार्य रूप देने में महत्वपूर्ण हैं। तृतीय महत्वपूर्ण पात्र होता है। 'पोहई', जो प्राय: वर-वधु की बहिन अथवा निकटस्थ संबध की कोई महिला होती है। जब भी वर, वधु ने किसी संस्कार के लिए चलना होता है तो 'पोहई' मिट्टी की औली द्वारा उनके मार्ग में पानी छिड़कती हुई चलती है ताकि मार्ग पवित्र हो जाए। पुरोहित पूजा स्थली को पवित्र करवाने के लिए जो भी व्यवस्था चाहे उसे भी पोहई ही पूरा करती है। एक प्रकार से वह विवाह के लिए घर-वालों की तरफ से मुख्य प्रबन्धक है तथा पुरोहित नाई और घर वालों के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करती है।

**चौका :**

विवाह का शुभारम्भ चौका स्थापन द्वारा होता है। कमरे के फर्श पर कुछ चौकोर स्थान घेर कर उसे गाय के गोबर द्वारा लीप-पोता जाता है। उस पर कुम्भ, नवग्रह, गणपति आदि स्थापित होते हैं। चौके के सामने दीवार पर 'कणदेओ' छापा जाता है। इसे छापना 'नाईन' का काम है।

जैसे ही चौके के लिए 'पोहई' फर्श की लिपाई शुरु करती है तो ग्राम की गायिकाएं उसे छेड़ने लगती हैं कि उसने चौका डालने में इतनी देर कैसे कर दी। पुरोहित ने तो कभी का मुहूर्त्त आदेश दे रखा था।

**परोहते दित्या मूहरत, तैं कुती लाई ऐड़ी बेर**
**चौका पुंडगदिए पोहिए, तैं कुती लाई ऐड़ी बेर**

'पोहई' तब उनकी शंका का उत्तर देती है कि वह यमुना नदी के घाट पर शुभ जल लेने गई थी, वहीं पर उसे इतनी देर हो गयी :—

**गयी थी पानी ल्योणे, मैं जमना कनारे**
**उत्थी लगी एड़ी बेर, सहियो उत्थी लगी बेर**

संवाद जारी रहता है :—

**चौका पुआदिए पोहिए, तैंस कुती लाई ऐड़ी बेर**
**गयी थी मैं कथला गऊआ रे गोहे नूं**
**उत्थी लगी एड़ी बेर, सहियो उत्थी लगी एड़ी बेर**

यह संवाद जन-मानस की प्रबल धार्मिक भावना की ओर संकेत करता है। गंगा-जमुना हमारे धर्म की उत्कट आस्थाएं हैं। हर संस्कार पर गंगा जल का छिड़काव कर पूजा स्थल को पवित्र किया जाता है। 'कपिला-गऊ श्रीकृष्ण की प्रिय थी। गाय का गोबर-मूत्र पवित्र माना जाता है। गाय के 'गूंतर' को तो पंचामृत में मिलाकर लोग उसे चरणामृत की तरह पान करते हैं।

**समूहत :**

चौके की स्थापना के बाद 'गणपति स्थापन' किया जाता है। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में सबसे पहले गणेश पूजा की जाती है। पुरोहित इसके लिए पहले से ही शुभ मुहूर्त तय कर लेते हैं। शुभ मुहूर्त गणपति स्थापन से ही 'समूहत्त' बना है। इस अवसर पर अपने-अपने घर में चौके के सामने पूजा कर रहे वर-वधु को 'बटणा' मला जाता है। इससे उनके शरीर में निखार आ जाता है तथा सौंदर्य बढता है। बटणा के समय महिलाए बटणा-गीत गाती हैं :

दो बणजारे मैं बटणो नूं भेजे
स्यो बणज़ारे नी हटी आए
फेरि असां बटणा किन्हां मलणा।
थोड़ा जेहा बटणा मेरे भाईयां नूं देयां
होर मलयां अंगे मेरेयां

वर/वधु की भावनाएं गीत के माध्यम से व्यक्त होती हैं कि कुछ बटणा मेरे भाईयों को दे दो तथा बाकी मेरे शरीर में मल दो। अपने विवाह के अवसर पर भी अपने भाईयों का उन्हें बहुत ख्याल है। यह रामायणिक परंपरा है। भाई का भाई के प्रति प्यार और सम्मान आदर्श व परस्पर माना गया है।

दो गजरेटे मैं छिए नूं भेजे
स्यो गजरेटे नी हटी आए
फेरि असां बटणा किन्हां मलणा।
थोड़ा जेहा घिया मेरी अम्मां नूं देयां
होर मलया अंगे मेरयां

अब वे अपनी माता के लिए कुछ घी देने के लिए कहते हैं। बारीबारी सबके लिए कहेंगे। इसमें हर समीपी संबंधी आ जाता है। इस लोक-गीत द्वारा संबंधों का निकट भाव स्थापित होता है।

विवाह जैसे प्रसन्नता के अवसर पर चुहलवाजी स्वाभाविक है। वर की माता काम में इतनी व्यस्त है कि बटणे के समय नहीं आ सकी है। महिलाओं ने उसे अनुपस्थित पाकर यह समझ लिया कि वह किसी कारण रुठ गये हैं। वे वर (लाड़े) को सचेत करती है कि तुम्हारी माता रुठ कर कहीं चली गयी है अब तुम्हें बटणा कौन मलेगा :—

जद हुइयां बटणे रियां बेलां
रुस्सी लाड़ेया तेरी अम्मा
हुण बटणा कुण लावे?

तब उस रुठने का मान - मर्दन करने के लिए एक दूसरा स्वर झंकृत होता है:—

रुस्सी है ता रुस्सन दयो जी
ल्यौणा बटणा लाड़े रियां भैणा
के बटणा वोह मलनगी।

माता रुठ गयी है तो कोई बात नहीं, बहिनें तो हैं। वे मल देंगी बटणा।

वधु पक्ष में बटणा-गीत कुछ भिन्न प्रकार के होते हैं। उनमें चुहलबाजी के स्थान पर गम्भीरता अधिक होती है।वधु-पक्ष में प्रायः उदासीनता छाई रहती है, शायद विछोह की अपरिहार्यता के कारण। उनकी बेटी पराई होकर कहीं चली जाएगी न तभी। इसलिए यहां गीत भी इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए गम्भीरता का जामा ओढ़ लेते हैं

एह तेरा बटणा कन्या कुती वणी आया
एह तेरा बटणा, एह तेरा सोहणा बटणा
ऊच्चां कैलासां ते एह वणी आया
ऊच्चां कैलासां ते......
ऊंच्या कैलासां तेरे कन्या शिव-पार्वती वसदे
शिव-पावती ने एह बटणा भेज्या!

कैलाश पर्वत धार्मिक आस्था का प्रतीक है। शिव और पार्वती द्वारा बटणा भेजने का अर्थ है कि ईश्वरीय अलौकिक शक्ति ने तुम्हारे विवाह को मान्यता दे दी है। इस पवित्र बंधन में बंधने से पूर्व तुम्हें शिव-पार्वती का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है अब तुम विवाह के लिए तैयार हो जाओ।

**साँद :**

शुभ मुहूर्त गणपति स्थापन एक धार्मिक रस्म है जो हर संस्कार में निभाई जा सकती है। इसके बाद साँद या कंगन संस्कार होता है। वर-वधु को कंगन बांधने का अभिप्राय है कि वह विवाह-बंधन में बंध चुका है। वह घर से बाहर नहीं जा सकता जब तक विवाह पूर्ण नहीं हो जाता।

साँद की पूजा चौके के पास होती है। इस अवसर पर विद्या की देवी सरस्वती की वन्दना की जाती है :—

**मेरिए सरस्वतिए ! कौण बैठे तेरे दो पटड़े**
**मेरिए सरस्वतिए ! ब्रह्मा विष्णु बैठे तेरे दो पटड़े**
**मेरिए सरस्वतिए !**
**सिया-राम बैठे तेरे दो पटड़े !**

पूजा स्थली पर ब्रह्म-विष्णु, सीता-राम एवं अन्य देव-देवताओं के आगमन की कल्पना की जाती है। इनकी पूजा होती है तथा वे समस्त विवाह संस्कारों के साक्षी माने जाते हैं।

साँद के अवसर पर दान-दक्षिणा के लिए अन्नादि व पैसे चढ़ाए जाते हैं। इसे कोठा भरना कहते हैं :—

**सांदी रा कोठा बाह्मणा खूब भरेयां**
**रची-रची कोठा भरेया**
**साडे चौल भतेरे जी बाह्मणा**
**साडे चौल भतेरे**
**रची-रची कोठा भरेयां-सरेया**

पुरोहित से आग्रह है कि कोठा भरने में कंजूसी न करें। हमारे यहां किसी चीज़ की कमी नहीं है।

साँद के अवसर पर ही वर/वधु के सिर पर 'मंजरौली' धर कर तेल डालने की रस्म अदा की जाती है। मंजरौली दुर्वा का एक गोलाकार पहिया सा होता है जिसे लाल रंग की डोरी से कसकर बनाया जाता है। इसे वर/वधु के सिर पर रखा जाता है। इस समय लाल डोरी का कंगन बांह में बांधा जाता है।

**हत्था नी अम्भैं तै बन्हया कंगणा ब्राह्मणा**
**सिरै चढ़ी मंजरौली**
**जिंहा तू खेल्या मेरे लाडलेया (लाडलिए)**
**अपणी अम्मां रिया गोदा**
**हत्था नी अम्भैं ते बन्हया कंगणा बाह्मणा।**

पुरोहित को सचेत किया जा रहा है कि सिर पर मंजरौली रख दी गयी है पर अभी उसने कंगन नहीं बांधा। वह व्यर्थ की देरी न करें।

पुरोहित मन्त्रोच्चारण के बीच कंगन बांध देता है। फिर प्रियजन बारी-बारी से तेल के कटोरे में पड़ी दूर्वा द्वारा तीन बार तेल डालने की रस्म पूरी करते हैं। तेल गीतों में जीवन की जीवंत चेतना का प्रखर रूप मुखरित होता है :—

**लूण केया सिऊणा कटोरा अड़िए**
**पर तेलो ने पटला तेल संजोयां**
**पर कनया ने,**
**दूजा तेल संजोया लाड़या तेरी माता ने**
**तिया तेल संजोया तेरी भाभिया ने !**

सर्वप्रथम कुंवारी कन्या ने तेल की रस्म अदा की है फिर अम्मां और भाभी ने !

तेल डाल देने के बाद वर ! वधु को काला कम्बल ओढ़ा कर आंगन में स्नान के लिये ले जाया जाता है। सबसे आगे पोहई पानी की औली से गंगाजल मिश्रित पानी का छिड़काव करती हुई चलती है। वर/वधु के पीछे महिलाओं का काफिला 'स्योल' (स्नान) गीत गाता हुआ चलता है।

**स्योल :**

विवाह में स्नान को पवित्रता का चरम महत्व प्राप्त है। स्नान के समय गाए जाने वाले गीतों की परंपरा विवाह गीतों की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

सर्वप्रथम स्वर यह सूचना देता है कि स्योल आरम्भ हो चुका है :—

**बया नी अड़िए मोइए**
**स्योल दिदिंए लाड़े दिए पैहणे**
**लाड़े नहौण संजोया**
**तेरे धांतू रा पटड़ा सजाया**
**नगरा रे नाऊए सदाओ**
**लाड़े नहौण संजोया**
**तेरे तांई मेरेया लाडलया**
**गोया रे मैं गुज्जरी बसाई**
**भरी कटोरा दहीं सिरे पर**
**लाडले रे डोल्या !**

गायिकाएं कहती हैं कि ओ, दूल्हे की बहिन दूल्हा नहाने के लिए तैयार बैठा है। नगर के नाई को बुला लो तथा हमारी पड़ोसन गुज्जरी दहीं का जो कटोरा लाई थी उसे हमने दूल्हे के सिर पर डाल दिया है। इसे दही स्नान कहा जाता है। दही-स्नान के बाद पानी की गड़बियां सिर पर डाली जाने लगती हैं। पानी डाले जाने का क्रम भी गीत के माध्यम से स्वतः अभिव्यक्ति पाता जाता है :

**पहला गड़वा किने डोलेया**
**आंगण चीकड़ होया**
**अपणे दादे रा पोता**
**पहला गड़वा तिने डोलेया ●**
**दुआ गड़वा किने डोलेया**
**आंगण चीकड़ होया**
**अपणे बाबे रा पुत्तर**
**दुआ गड़वा तिने डोलेया !**

आंगन कीचड़ से सन गया है। कौन-कौन किस क्रम में पानी के गड़वे डाल रहा है।

स्योल हो चुकने के बाद पोहई वर/वधु की आरती उतारती है। इसे 'पोहणा' कहते हैं। चौके वाले कमरे में जाने से पूर्व आंगन में अथवा द्वार पर उसे पोहया जाता है। इस अवसर पर महिलाएं आंगन में पनपी दुर्वा से पूछती हैं कि तु तो सूखती जा रही थी अब एक दम कैसे हरी हो गयी। शायद तुम्हे स्योल का पानी मिल गया है जिसमें हल्दी और नींबू मिलाए गए थे :

**दु:खी केड़ी बुटड़िए**
**किन्हे गुणे हरी होअई**
**अम्बर जे गरजे, मेहा बरसे**
**बूंदे पअई हरी होअई**
**हल्दी पाइ सुहाग जे मिलेया**
**नीबूंए रंगली हो आई ।**

हाथ पीले करने के लिए हल्दी लगाई जाती है तथा नीबू रंगली का रंग पक्का करने के लिए उसमें मिलाए जाते हैं।

वर पक्ष की ओर एक विशिष्ट संस्कार और है। इसे 'जोगटू' कहते हैं। वर और उसके छोटे भाइयों को साधुओं का भेष बनाकर भिक्षा मांगनी होती है। एक हाथ में वे चिमटा और दूसरे में भिक्षा की झोली थामते हैं। महिलाएं आंगन में दायरे में खड़ी होकर उनके दान-पात्र में भिक्षा डालती जाती हैं। जोगटू के अवसर पर लोक गीत :

उड़ेया सुहागणी पालुआ
लाड़ा चौल मंगगे
दिदियां सात सुहागणी
लाड़े जो दिदियां सीसां
जुग-जुगजिआं लाड़ेया
भरियां लख भरेसां
लख भरेसां !
थोड़िया भरेसां भरियां
भरियां लखां-करोड़ा।

समाज की आशीषों का महत्त्व व्यक्ति के लिए अक्षुण्ण है। आशीर्वाद का यह रूप 'जोगटू' न केवल महत्वपूर्ण व मनोरजंन का माध्यम है अपितु व्यक्ति के समाजीकरण का भी रूप है। व्यक्ति जो कमाता है उसमें समाज का भी हिस्सा है। उसे वह मिल-बांट कर ही खाना चाहिए। यह गांधीवाद का रूप है।

वधुपक्ष में 'जोगटू' नहीं होता।

फिर वर/वधु को भीतर चौके वाले कमरे में ले जाया जाता है :

तू ना अन्दरा आएआं लाड़ेया
तेरी अम्मा सदाए
क्या तैं खादेया लाड़ेया
नहाई धोई तैं क्या पीते या
अन्दरा आया लाड़ेया
गुड़-छियू खादेया नहाई-धोई
अमृत पीतेया अन्दर आई
अम्मे पकाए गुड़ले बबरू
भाभिए रखे लकोई
इन्हां चीजां न करेयां भाभी
अज्ज तेरे बंडणे रिया बेलां !

महिलाएं पूछती हैं कि तू भीतर आ जा। नहाने के बाद तूने क्या खाया है। वह उत्तर देता है कि उसने गुड़-घी खाया है और अमृत पिया है। पर माता ने जो गुड़ के 'बबरु' बनाए थे, उन्हें भाभी ने कहीं छिपा दिया है। फिर वह भाभी से कहता है कि आज तो बांटने का समय है तुम इस लुका-छिपी से बाज़ तो आओ। ऐसा छल मत करो।

भाभी-देवर की चुहल जग-मशहूर है। इस अवसर पर भी वे चुहल बाज़ी से बाज़ नहीं आते।

### विरड़ी

विरड़ी मातृ पक्ष का संस्कार है। भानजे या भानजी के विवाह पर मामाओं का बहुत बड़ा दायित्व होता है। उन्होंने जो शगुन और वस्त्रादि डालने होते हैं उस संस्कार को 'विरड़ी' कहा जाता है। विरड़ी भाई-बहिन के प्यार का द्योतक है. महिलाएं मायके से किस सीमा तक ममत्व अनुभव करती हैं इसकी एक झांकी :—

उड़ी जायां भाईया कालेया कागा
जाएई आयां मेरे प्योकड़े देस

क्या नावं तेरे वीरा रा
क्या नावं तेरे प्योकड़े देस
जुध्यापुरी मेरा प्योकड़ा देस
रामचन्द्र नावं मेरे वीर दा

इस गीत की रचना उस युग में हुई जान पड़ती है जब संचार साधनों का अभाव था और केवल संदेशवाहक ही सम्पर्क माध्यम थे। आज भी किसी घर के आंगन में उगे पेड़ पर कौआ बोलने लगता है तो उसे किसी प्रियजन के आगमन का प्रतीक माना जाता है।

वर्तमान युग में नव सम्पर्क साधन विकसित हुए हैं तो स्वाभाविक तौर पर उनकी प्रतिध्वनि लोक साहित्य में गूंजने लगी है। प्रस्तुत लोकगीत इसी ओर इंगित करता है कि वर/वधु के मामा गाड़िया लेकर लाए हैं :—

केह तू आयां भाईया बड़ेया समाणे
केह तू रहेयां आपणेयां घरें।
मैं ता आया बेहणी बड़ेयां समाणे
गड्डिया खड़ी भैणे तेरेयां अंगणे।
पहल पहेनायां भाईया पंडता-पंडित्याणी
फेरि पहेनायां भैणा-भैणिांईयां।
भैण-भणोई दोनों जणे
फेरि पहनायां ससू-सौहे।

पहला उपहार पुरोहित और उसकी पत्नी के लिए दिए जाने का आग्रह है। मामा बारी-बारी से उपहार देता है और महिलाएं उसकी श्लाघा में गाने लगती हैं :—

नरसि भगत आयो जी,
चंदा रिया चानणिया
सारा शहर बन्हाया जी
चंदा रिया चानणिया ।
सियून्ने-स्वर्णा रे गहणे अन्दे
पहनयां धिए लाडलिए (पुत्तरा लाडलेया।)
चंदा रिया चानणिया
सौ-सठ मण चौल वासमती अंदे
खायां धिए लाडलिए
चंदा रिया चानणिया।

मामा की ओर से अपने भानजे/भानजी के विवाह में एक धाम दान देने का बहु-प्रचलित रिवाज है। उसी की झलक इस गीत में है। विरड़ी गीतों में मंगल भी गाए जाते हैं। मंगल-गीतों का प्रारूप भी मामा द्वारा दिए जाने वाले दान व उपहारों को समेटे हुए होता है :—

मंगल गाओ नी सहियो, वीर परौणा आया
छड़ कपड़ेयां री अन्दी, होर अन्दे बाजू-बंद
मंगल गाओ नी अड़ियो, वीर परौणा आया
डब्बे भरी गहणे अन्दे, होर अन्दे बाजू-बन्द
मंगल गाओ नी सहियो, वीर परौणा आया!

विरड़ी भाई-बहिन के असीम रिस्तों का प्यार है। वर/वधु की माता प्रायः भाव-विहवल होकर आंसू टपकाने लगती है, शायद अपने बचपन की मीठी यादें कर।

### बज्यात्रा :

बज्यात्रा 'वर यात्रा' का अपभ्रंश है। वर की शुभ शगुन में सेहराबंदी करके उसे बारात के लिए तैयार किया जाता है। उसे मामा द्वारा दिए गए सुन्दर वस्त्र पहनाए जाते हैं तथा नाई सिर पर सेहरा बांधता है। कपड़ों को धारण करने से पूर्व उनकी आरती उतारी जाती है :

**कपडेया धूपेयां नाऊआ**
**लाड़े रे मन हियऊड़े - जियऊड़े**
**होरी रे मन रौंहसे ।**
**सेहरे धूपेयां नाऊआ**
**होरी रे मन हियऊड़े - जियऊड़े**
**मामेयां रे मन रौंहसे।**

'कपड़े धूपने' का मतलब है उनकी आरती उतारना। सबके मन (हिय) प्रसन्नता से मुस्करा रहे हैं। कपड़े आदि तैयार हैं अब वर के बाल व दाढ़ी संवारी जानी है तो महिलाएं नाई को सचेत करती हैं :—

**खोलेयां नाऊआ अपणिया सियूने रिया कतीरिया**
**लाड़े भाऊआ बाल कटाणे।**
**खोलेयां नाऊआ अपणिया सियूने रिया बतीरिया**
**लाड़े भाऊआ दाढ़ी कराणी ।**
**काहेरी भाईया तेरी कैंची-कटौरी**
**काहेरी भाऊया तेरी कतीरी**
**लख-लख दी मेरी कैची-कटोरी**
**दो लख दी मेरी कतीरी**

बाल-दाढ़ी संवर चुकी है अब दूल्हा वस्त्र धारण करने लगा है। उसके अंग-अंग मुड़ने लगे हैं और वह बहुत सुन्दर, सबसे सुन्दर दिख रहा है :—

**म्हारा कोयर भैया, सबणी ते चंगा**
**पहनेणे लगेया कपड़ेयां, मोड़ने लगेया अंगा**
**म्हारा कोयर भैया, सबणी ते चंगा**
**पहनेणे लगेया सेहरा, मोड़ने लगेया पगड़िया**
**म्हारा कोयर भैया, सबणी ते चंगा।**

अब दूल्हा सज-संवर कर तैयार है। वह आंगन में एक सुंदर आसन पर विराजमान है और सगे-संबंधी उसे उपहार दे रहे हैं। उसके माथे पर टीका लगाते हैं और अपनी भेंट उसके हाथों में देते हैं। वह उसकी वंदना करता है और भेंट स्वीकार कर पास रखी 'छड़' में डाल देता है। टीका लगाने की इस प्रथा को 'तमोल' कहते हैं। गीत यह इंगित करते रहते हैं कि किस समय पर कौन टीका चढ़ा रहा है :—

**पहला तमोला लाड़ेया, तेरी कनेया लई ल्याई**
**दूजा तमोला तेरी अम्मा ने अन्दा।**
**तिजा तमोला मामी भेंटे, चौथा ल्याबे मासी।**

तमोल के साथ ही 'घोड़ी' गीत भी गाये जाने लगते हैं।

### घोड़ी :

घोड़ी दूल्हे का वाहन है। भले ही अब पालकी और कारों का उपयोग होने लगा है परंतु घोड़ी, वाहन के रूप में जिस प्रकार विवाह परंपरा में पराभूत हुयी है, उसका वहां से निकल पाना संभव नहीं। घोड़ी परंपरा है और लोक-गीतों

के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति पाती है। घोड़ी गाए बिना तो विवाह संस्कार पूर्ण ही नहीं हो सकता। घोड़ी गाए जाने का कोई विशेष समय नहीं है। यह उस समय से गायी जाने लगती है जब विवाह-संस्कार का प्रथम अंकुर फूटता है और क्रमशः गाई जाती रहती है। घोड़ी गीतों में सामाजिक चेतना का तीव्र स्वर है। बड़ों की बातें सुनना, भावना में 'शरीक' होना तथा आज्ञा-पालन कितनी ही शिक्षाएं लेकर आती है घोड़ी :—

**घोड़ी तैन्नो मैं दिदियां, काठी दे नाल सज़ा**
**जाणे वाले वीर सजणा, साडी गल्ल सुण के तूजा**
**किसदी भिज्जी चून्नी, किस दा भिज्या रुमाल**
**वनरी दी भिज्जी चुन्नी, बन्ने दा भिज्या रुमाल ।**
**घोड़ी तैन्नो मैं दिंदिया........**

मायके से अपनी विदाई के कारण वधु रोती है। उसका शालू भीग जाता है। वर अपनी वधु से संवेदना जताने के लिए अपने रुमाल से उसके आंसू पोंछता है। इस प्रकार उसका रुमाल भी भीग जाता है।

दूल्हे की सुन्दर घोड़ी पर महिलाएं न्योछावर हो जाती है :—

**घोड़ी ता तैन्नो मैं लई दिंदियां**
**तेरी काठिया दी छप्प न्यारी**
**मेरे बनेया मैं जाऊं वारी**
**गंगा दी सौ सठ पैड़ी, मैं चढ़ी उतरी**
**मेरे बनेया मैं जाऊं वारी**
**गंगा दा नीर नराला**
**मेरी भीजी दस गज साड़ी**
**मेरे बनेया मैं जाऊं वारीं।**

तब अनायास गायिकाओं को अपनी सास, जेठानी और ननद के लड़ने का स्मरण हो आता है। गायिकाएं उस दुःख के स्मरण मात्र से दुःखी तो हैं पर दूल्हे के विवाह की प्रसन्नता में उसे भुला कर उसकी खुशियों में न्योछावर हो जाती हैं।

**सस्स ता लड़दी**
**जठाणी भी लड़दी**
**नाले लड़दी नणद कुआंरी**
**मेरे बनेया मैं जाऊं वारी**

'घोड़ी' व्यक्तिगत स्वतंत्रता की समर्थक है यद्यपि अब मोटर आदि वाहनों का प्रयोग भी होने लगा है पर घोड़ी ने संदेश प्रसारित किया है उसकी परंपरा सदियों तक अक्षुण्ण बनी रहेगी :—

**बन्निया ने भेजियां चिट्ठियां**
**रहियो अजादिया नाल**
**तू बन्ना मोटर चढ़के आयो**
**मुरादां पूरियां ने।**

अपनी शादी की खुशी में दूल्हा बहुत प्रसन्न है। उसकी अभिव्यक्ति कुछ यूं होती है :—

**चाओ लगेया नी महियो, लोभ लगेया**
**मेरे चौअले रे मना विच, चाओ लगेया**
**बाह्मणा री गली लाड़ा, ब्याही गलांदा**
**मेरे चौअले रे मना विच, चाओ लगेया**

'चाओ' और 'लोभ' प्रसन्नता के द्योतक हैं।

मामा द्वारा दिल्ली से मंगवाया गया सेहरा जिसे मामी ने अपने हाथों से सजाया है देखकर भी प्रसन्नता के जो भाव प्रस्फुटित होते हैं, अभिव्यक्ति पाने के लिए छटपटा रहे हैं :—

**गुलाबी फूल्ल चमेली दा**
**लाड़े रे मामे दिल्लीया ते मंगाया सेहरा**
**मामी राणी ने महलां च बैठी सज़ाया सेहरा**

गीतों में कल्पना से प्राप्त होने वाला आनन्द व्यंजित है। निर्धन व साधनहीन लोग प्रसन्नता के इस अवसर पर दिल्ली जैसे महानगर और महलों आदि की कल्पना करते हैं। कल्पना में जीने का सुख भी बहुत बड़ा है।

प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए कुछ हल्के-फुल्के गीत भी हैं जो सिर्फ विवाह की सूचना देते हैं :—

**गलियां-गलियां च शोर है**
**अज कुसरी शादी है**
**बन्ने री बैहणा बोलदी**
**अज म्हारे वीरे दी शादी है।**

दूल्हा अब ससुराल जाने के लिए बारात की तैयारी में बैठा है। वह अपने प्रियजनों से घोड़ी मांगता है :—

**घोड़ी ल्याई दे पिता जी**
**मैं सौरेयां देश जाणा।**

घोड़ी आ जाती है। दूल्हा उस पर सवार हो जाता है :—

**नीली घोड़ी बेटा आप पिढ़े**
**कौण सुहागण तेरे सगण करे !**

तब महिलाएं उसे सचेत करती है कि समाज अब केवल पुरुष प्रधान ही नहीं रह गया है और न आजकल की लड़कियां अनपढ़-गवारु हैं। वे शिक्षित हैं, कॉलेज जाती हैं, स्टेजों पर भाषण देती हैं। इसलिए अपनी होने वाली चिरसंगिनी से समानता का व्यवहार करना जरुरी हैं :—

**घोड़ी पीढ़ वीरा, चल सौरेयां दे देश**
**अजकल दियां कुडियां बे वीरा**
**कॉलेजां जाई पढ़रियां**
**स्टेजां उपर खडरियां**

अब उन्हें याद आती है कि दुल्हन कितनी अधीरता से बारात की प्रतीक्षा कर रही होगी। तब वे कहती हैं :—

**झट घोड़िया पीढ़ बन्नेया**
**केह बन्नी हुई उदास।**

तब उस शोभा-यात्रा में केन्द्र बिन्दु के रूप में सज़े दूल्हे का वर्णन :

**मत्थे ते चमकण बाल, मेरे बनरे दे**
**आ बे बन्ना ला सगणा री मेंहदी-२**
**मेंहदी दा रंग सुआ लाल**
**अज्ज मेरे बनरे दा।**

शोभा चित्रों का एक रूप नहीं है बल्कि भरमार है। आधुनिकता में रंगे लाड़े का एक और चित्र :

**अंग्गे ता वीरा तेरे कपड़े विराजे**
**बाहीं घड़ी लसाके मारे**
**टाई चैन अनमोल.....**

अब बारात चल पड़ी है। उसी की सूचना :—

घोड़ी पीछे लाड़ा सौरे घर जावदा
जी सौरे घर जावदा
सुई-सुई पगड़ी ते फुल्लां बरसावदा

और अब महिलाएं दूल्हे को सचेत करती है कि विवाह संस्कारों की जंग में छोटी सालियों की चुहलबाज़ी से हार मत जाना। जीजा को तो उन्हें उल्लू बनाकर वापस आना चाहिए :—

सौरे देश जाईयो जी
साली मंग्गे लाईचियां
लौंग हत्थ फडाईयो जी
सौरे देश जाईयो जी
साली मंग्गे मेवेआं
तां सपारी हत्थ फडाईयोजा....

और तब वे आशा की ज्योत्स्ना से दिल फैलाती हैं :—

सालियां ने घेरा पाया, दिलड़ू घबरावदा
करड़े जवाब देई, लाड़ा घर आवदा।

और तब बारात चल देती है। दूल्हा सबको सलाम करके पूछता है कि उसकी ससुराल कितनी दूर है

घोड़ी ते बैठा लाड़ा करदा सलाम
कितने कर दूर मेरी बन्नी दा देश।

उस समय की बात है जब संबंध माता-पिता तय करते थे। बेटे को तो उन्हें निभाना भर होता था। उसे नहीं होता था मालूम कि वहां कहां जा रहा है। उसकी ससुराल कहां है और कैसी है उसकी दुल्हन! आधुनिकता इन परंपराओं को अब बदल रही है।

**सुहाग :**

सुहाग गीत वधु के सौभाग्य के प्रतीक होते हैं। इस प्रकार सुहाग सिर्फ वधु पक्ष की ओर ही गाए जाते हैं। वर पक्ष में जो घोड़ी गीतों का महत्त्व है इस ओर वह सुहाग गीतों में निहित है। सुहाग गीतों का कोई एक समय निश्चित नहीं है बल्कि विवाह के आरंभ से अंत तक वे लगातार गाए जाते रहते हैं। वधु की उदासीन भावनाओं की परिणिति होते हैं सुहाग गीत :—

अंगणे ता बाबा तेरे तोते जे बोल दे
बागी पके सैले आरू
किन्हा बाबा तैन्नू धियां बुरी लग दी
देया बाबा तैन्नू खर्च भारी।

पर उसका पिता उत्तर देता है कि न तो बेटी का मुझ पर कोई बोझ है और न ही मुझे उसके विवाह पर होने वाले खर्च की चिन्ता है और साथ ही वह यह भी जता देता है कि विवाह एक अनिवार्य सामाजिक रीत है जिसे निभाने के लिए पुरोहित ने तुम्हारा विवाह तय किया है :—

ना ता धिए तू मैन्नू बुरी लग दी
ना ता खर्च भारी
दोष देओ पढ़यां पड़तां
ब्याह जिने तेरा रचाया।

लड़की की उदासी की परतें अनवरत खुलती जाती है :—

**साड़े बाबे रे बंगले स्कूल खुले**
**जित्थे पढ़दियां कन्या कुंआरियां**
**इक पढ़न लग्गी, दूजी पढ़ी हटी**
**तिज्जी ने ला लई, लम्मी डवारी।**

माता-पिता बेटी से विछोह के कारण बहुत दु:खी हैं। उनकी वेदना आंसुओं के माध्यम से बह रही है :—

**हत्थ लैके बिन्नुआ माता रोवै**
**पिता रोवे मुख मोड़ी-मोड़ी।**

दोनों ही अपने आंसुओं को छिपाने की कोशिश में हैं पर सुबकियां हैं जो दगा दे जाती हैं। बेटी तो आंगन में दाना-दुनका चुगने आई चिड़िया की तरह है जो अब पल भर की मेहमान है :—

**अंगणा तेरे सिऊने रिंया चिड़ियां**
**चुग चुगी उड़ी जाना मेरे बाबा जी**
**मैं हुई तेरे दर दी परौणी !**

पुरुष प्रधान समाज में बेटे पैतृक संपत्ति पर हावी रहते हैं। बेटी का समान हिस्सा होने पर भी सामाजिक प्रथाएं उसे इससे वंचित कर देती हैं। मां ने उसे कुछ यदि दिया भी तो भाभियां मुंह फुला लेती हैं। इसी विसंगति को रेखांकित करता है यह गीत :

**बड़ियां-बड़ियां राजगीरां बाबा जी**
**पुत्तरां नूं दित्तियां**
**थोड़ा जेहा दाज मेरी अम्मा दीता**
**ता भाभियां हुइयां नराज।**

पर वह तो सिर्फ पिता से प्यार चाहती है, संपत्ति से उसे कोई मोह नहीं है :—

**अंगणता तेरे बाबा सोने रियां चिड़ियां**
**उड़ी-उड़ी चलियां, केह मैं होई पराई मेरे बाबाजी**
**दे देऊ मैंन्नूं इक प्यार दी लोरी मेरे बाबा जी।**

इस पर मां उसे समझाती है कि उसके लिए उन्होंने बहुत सुंदर पति खोजा है :—

**पीपल दिया डालिया पींगा जे पईयां**
**जो जुट जटैयो जोगिए डराई**
**बेटा ऐसा जोगी गोरा मुखड़ा**
**चिए वर तेरा ।**

फिर वधु को अपनी सखियों-सहेलियों का स्मरण सालने लगता है। गुड्डे-गुड़ियों के खेल, प्यार के झगड़े ! वे अब कब मिलेंगी ?

**मेरी प्यारी सखियां-सहेलियां**
**हुण असां किंहा मिलणा।**
**धर्मी जेह बाबा सदगे**
**असां सहियो तद ही मिलणा।**

विवाह गीतों में सुहाग-गीत गहन एवं उदास भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। इसलिए सबसे अधिक गम्भीर होते हैं। उनमें निहित प्रेरणा लड़की के लिए अपने भावी जीवन की कुशलता के लिए तैयार करती है।

**गाली :**

मनोरंजन मनुष्य की आदिम आवश्यकता है। मानव जीवन को एक दासता से मुक्त करने लिए ही मनोरंजन के

साधनों का अन्वेषण हुआ है। विवाह गीतों विशेषकर वधुपक्ष में सुहाग गीतों से आई उदासी, वातावरण की बोझिलता तथा तनाव से मुक्त होने के लिए दोनों पक्षों के बीच चहल बाज़ी का आदान-प्रदान होता है। दुल्हे व उसके संबंधियों तथा बारातियों के लिए महिलाएं गाली गीत गाती हैं। गाली नाम होते हुए भी वे काफी शिष्ट गीत होते हैं। यदि अशिष्टता का कुछ अंश प्रवेश पा भी जाए तब भी उसका बुरा नहीं माना जाता है।

गाली गीतों का समारम्भ बारात के अंतिम भोज के समय होता है। दुल्हा आंगन में बनी बेदी मैं भोजन-ग्रहण के लिए बैठा होता है। उसके साथ उसका (लजोड़ू) और अन्य हम उम्र दोस्त! शेष पांतो में अन्य संबंधी व बाराती। जैसे ही दुल्हा प्रथम ग्रास मुंह में डालता है, एक स्वस्थ्य मनोरंजन का स्वर गूंज उठता है :—

लाड़ा सत्तां दिनां दा भूक्खा, ग्राहियां खूब मारदा
अम्मा ने भेजेया लाडला भूक्खा, ग्राहियां खूब मारदा।

सात दिनों से भूखा, दूल्हा बड़े-बड़े ग्रास लेकर खा रहा है। फिर बारी आती है अन्य सगे संबंधियों की :—

केह लाड़ा भूक्खा आ गया, मैं खिचड़ी पकावां
केह लाड़ा...........
लाड़े दे सामणे येह कौण बैठा?
येह जी लाड़े दा बापू
पूछ क्या नाव है ऐदा
ऐदा नांव है जी डोडा।
मार साले दे डंडा, तोड़ ऐदा गोडा
केह लाड़ा भूखा आ गया मैं खिचड़ी पकावां
लाड़े दे नाल ऐह कौण बैठा?
येह जी लाड़े दा लजोड़ू
पूछ क्या नांव है ऐसदा
ऐदा नांव है बंदर
मार साले दे डंडा, कर एदा ढीड़ अंदर

फिर आती है बारातियों की बारी :

जेठ दी न्हारी हैं, जेठ दी न्हारी है
आलू दी तरकारी है, हैजे दी बमारी है
थोड़ा-थोड़ा खाओ, पेट फूटी जाणा।

यह एक सामूहिक गाली है। बहुधा गाली दूल्हे के संबंधियों के प्रति व्यक्तिगत आक्षेप करने लगती है :—

राम मेरी जिंदड़ी
लाड़े रिया अम्मा जो चड़ेल चिमड़ी
धूणी लैणे मेरे बाबे ले आई
तिने इक छडवाई
दूजी होर चिमड़ी।

इसी प्रकार का एक और स्वर, दूल्हे की माता के लिए :

लाड़े रिया अम्मौं ले गया बन्दर
आहो नी सहियो लै गया बन्दर
वाह-वा ! लै गया बंदर
खंरा होया मुईए लै गया बन्दर

लाड़े का सबसे करीबी साथी लजोडू गाली की मार से बिंधने लगता है :—

डबल रोटी — डबल रोटी
रोटी है जलंधर दी
लाड़े लजोड़ू री, शक्ल है बदंर दी
बंदर दी जी, बंदर दी।

सालियों की अपने जीजा के प्रति चुटल जग जाहिर है :—

जीजा-जीजा लाची दे
लाची है नी ता सकी चाची दे।
जीजा-जीजा पान-सुपारी दे
पान-सपारी है ना ता भैण कुआंरी दे।

दुल्हन के अपने ससुराल पहुंचने के साथ ही उसका स्वागत भी गाली से ही होता है। व्यंग्य से स्त्रियां कहती हैं कि वह अकेली क्यों आ गयी है साथ अपनी माता को लेकर क्यों नहीं आई —

अपणियां अम्मा सौगी लईकने काहनी आई
मुईए तू कहल्ली कॉह आई?

गाली-गीत जीवन के प्रति उत्कट मोह के प्रतीक हैं। उनमें न केवल जीवन जीने की चाह है बल्कि सार्थकता के साथ जीने की प्रेरणा भी है। भोले-भाले हिमाचलवासियों के पास इस प्रकार के सामाजिक मनोरंजन के अतिरिक्त अन्य साधन थे भी क्या? फिर मनोरंजन ही नहीं, हमारी सांस्कृतिक विरासत का एक अमूल्य भाग भी हैं।

## पड़ंजणी (विदाई) गीत

विदाई गहन उदासी का अवसर होता है। बेटी का हमेशा-हमेशा के लिए पराया होकर चले जाना प्रत्येक भावुक हृदय में अवसाद का धुंआ सुलगा देता है। विदाई गीत लड़की के इन्ही भावों की अभिव्यक्ति करते हैं :—

कालिए बदलिए बरेयां मेरे बाबे रे अंगणे
बाबे रा खटेया, अम्मा रा खिजेया
मां रैहणा बाबे रे आंगणे।

वह पिता के आंगन में हमेशा-हमेशा के लिए खेलना चाहती है पर सामाजिक-रीत उसकी इस आकांक्षा के आड़े आ जाती है। वह तो दुल्हन बनकर जा रही है। डोली में बैठती बार भी वह यही गुहार करती है पर पिता-माता उसे विदाई देने के लिए मजबूर है :—

तेरेयां महलां ते अंदर बे
बाबुल मेरा डोला अड़ेया
तेरे डोले टपाई देंगा बे
धिए घरै जायां अपणै।

बेटी के लिए अब घर की परिभाषा बदल गयी है। पिता कहता है कि अब उसका घर तो उसका ससुराल ही है। वह पुन: पिता से कहती है कि उसकी माता भीतर रो रही है। वह अपनी प्रिय अम्मा को रोता-बिलखता छोड़कर कैसे चली जाए पिता उसे अपने ससुराल जाने की रीत निभाने के लिए प्रेरित करता है।

तेरेयां महलां ते अंदर बे
बाबा मेरी अम्मा रोबे।
तेरिया अम्मा जो चुप कराई देंगा बे
धिए घरैं जायां अपणै।

फिर बेटी अपने पिता से सास के सामान्य व्यवहार की शिकायत करती है। वह उसे खेलने कहां देगी। मायके का दुलार

उससे हमेशा-हमेशा के लिए खो जाएगा। अतएव वह पिता से प्रार्थना करती है कि उसे अभी और अटखेलियां करने का अवसर दिया जाए।

चदां रिया चानणियां राती
मेरे बाबा जी कुडियां नूं खेलण दे
तेरे राज ता में खेलूं मेरे बाबा जी
सस्सू नी खेलण दिंदी
दिने कसीदा कढांदी
राती चरखा कतांदी मेरे बाबा जी।

ननद के विवाह हो जाने पर उसकी भाभी प्रसन्न है। अब भाभी एक छत्र राज्य करेगी उस घर में और ननद का हस्तक्षेप समाप्त हो जाएगा। बाकी सभी विद्रोह के गम से दु:खी हैं पर भाभी का मन हुलस रहा है :—

अम्मा रोंदिया दा भिज्या शॉल
बाबे दा भिज्या रुमाल
वीर रोंदा जग सारा
पर भाभिए दे मना विच चाओ!

अब बारात विदा लेती है। उदासी की गहन परतों एवं बैंड की उदास धुनों में लिपटा स्वर सिर्फ पुकारता रह जाता है

साडा चिड़िया दा चम्बा वे
बाबुल असां उड़ी ओ जाणा।

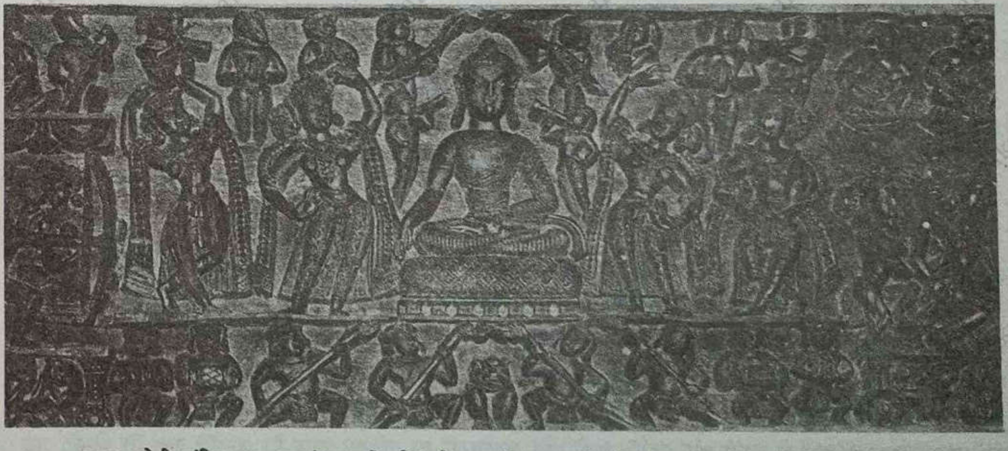

मृकुला देवी मंदिर उदयपुर (लाहुलस्पिति) में लकड़ी पर उत्कीर्ण महात्मा बुद्ध की प्रतिमा

छाया—हाकम शर्मा

रपट:-

# स्व. लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह

**अशोक हंस**
**तकनीकी अधिकारी, हिमाचल अकादमी**

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी शिमला द्वारा प्रदेश के प्रसिद्ध साहित्यकार स्व. लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह का आयोजन गत वर्षों से किया जा रहा है। स्व. लाल चन्द प्रार्थी का जन्म कुल्लू जिला के नगर गांव में मार्च, १९१६ में हुआ। वे ११ दिसम्बर, १९८२ को स्वर्ग सिधार गए। स्व. प्रार्थी जी लोकप्रिय शायर, सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और प्रतिष्ठित आयुर्वेद विशेषज्ञ थे।

इस वर्ष अकादमी द्वारा स्व. लाल चन्द प्रार्थी जयन्ती समारोह २ और ३ अप्रैल, १९८९ को चिल्डन पॉर्क हॉल, सोलन में हुआ। इस समारोह का उद्घाटन २ अप्रैल सायं प्रो. नारायण चन्द पराशर, संसद सदस्य एवं उपाध्यक्ष अकादमी ने किया। अकादमी के सचिव डॉ. बंशीराम शर्मा ने मुख्य अतिथि, और साहित्यकारों व दर्शकों का स्वागत किया।

उद्घाटन के उपरांत कवि-सम्मेलन आयोजित हुआ। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से आए कवियों ने हिन्दी, पहाड़ी, उर्दू तथा संस्कृत में अपनी कविताएं प्रस्तुत की। कवि सम्मेलन का संचालन सोलन के कवि श्री जयदेव किरण ने किया। कुछ कविताओं की पंक्तियां इस प्रकार है :—

**सत्येन शर्मा** : भले ही रही हो सच/अनेक बार यह बात/कि आती नहीं अकेले/और सूचना देकर विपत्ति/लेकिन पूरा सत्य नहीं यह।

**जयदेव किरण** : पर आज का दिन हर पल/कितना बड़डा/कितणा महान/दिलां दा भाषा संस्कृतिया रे ऋषि रा/ध्यान।

**केशव शर्मा** : कवि कवीणां सुहृदां सुमित्रं/मानं कलानां गुणिनां गुणज्ञम्/हिमाचले गौरव कीर्तिमूर्ति/स्मरंति लोका: प्रियलालचन्द्रम्।

**दीपक डोगरा** : बड़े अजीब हैं हालात आज मेरे शहर में/ये कैसे थम गए लम्हात आज मेरे शहर में/न जाने किसलिए हर-सू अजीब सी चुप है/कोई करता नहीं है बात आज मेरे शहर में।

**तुलसी रमण** : देवता के आंगन में/बजता है नगारा/धीरे-धीरे धमनियों में/उतरती लाल/अंधेरी संदूक की गंध में से/निकलते नहीं मेले खेले के कपड़े/साल ये एक बार।

**स्व. लालचंद प्रार्थी** : जिन्दगी दूर से लगती थी सुहानी कितनी/पास आई है तो लगती है बाबलों की तरह/इक फकत फूल नहीं गम का मदावा से चांद/खार भी पालता हूं पांव के छालों की तरह।

कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो० नारायण चन्द पराशर ने कहा कि प्रार्थी जी की महत्वपूर्ण देन हिमाचल प्रदेश में कला, संस्कृति और भाषा अकादमी तथा आयुर्वेदिक विभाग की स्थापना करना है। उन्होंने बतलाया कि अकादमी द्वारा १४ नवम्बर, १९८९ से पूर्व पहाड़ी हिन्दी शब्दकोश प्रकाशन के उपरांत उपलब्ध करवाया जाएगा। अकादमी ने पहली बार साहित्यकारों और कलाकारों का परिचय छापा है। उन्होंने कहा कि हिन्दी, उर्दू और पहाड़ी आदि भाषा में लिखे साहित्य को मान प्राप्त हो और पहाड़ी भाषा की मान्यता के लिए हमें प्रयत्नशील होना है।

तीन अप्रैल की प्रातः लेखक गोष्ठी का आयोजन हुआ। प्रथम सत्र में श्री मनोहर सागर पालमपुरी ने 'हिमाचल की उर्दू ग़ज़ल में लाल चन्द प्रार्थी की देन बजूद-ओ-अदम के विशेष संदर्भ में' विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने पत्र में कहा कि इतिहास साक्षी है कि उर्दू भाषा का आविष्कार तेरहवीं सदी में अमीर खुसरो ने किया। वे पहले फारसी भाषा में ग़ज़लें लिखते थे। उनकी माता ने उन्हें परामर्श दिया कि भारत में बोली और समझे जाने वाली भाषा में ग़ज़ल करें ताकि जनसाधारण भी उन्हें समझ कर लुत्फ उठाए। अमीर खुसरो ने बादशाहों के लश्करों में बोली जाने वाली भाषा की मीठी सरिता हिन्दी भाषा से निकाली और उर्दू ग़ज़ल का प्रारम्भ किया। प्रार्थी जी पर पुराने साहित्य, विज्ञान के युग, एटमबम की सीमा से कहीं आगे बढ़ी दुनिया, वर्तमान जीवन की यथार्थ से भरी कड़वी, मीठी वास्तविकताओं का प्रश्न चिन्ह आदि का प्रभाव रहा है जो कि उनकी ग़ज़लों में भी आया है।

इस विषय पर चर्चा करते हुए अनेक लेखकों का मत था कि लेख पर संशोधन होना चाहिए तथा इन्हें तीन भागों में प्रस्तुत करना चाहिए। उर्दू ग़ज़ल, हिमाचल में उर्दू गजल तथा हिमाचली की उर्दू ग़ज़ल को स्व. प्रार्थी जी की देन वजूद ओ अदम के विशेष संदर्भ में।

लेखक गोष्ठी के इस सत्र की अध्यक्षता साहित्यकार प्रो. चन्द्रवर्कर ने की। उन्होंने कहा कि एक विचार गोष्ठी इसी विषय को लेकर फिर से होनी चाहिए। स्व. प्रार्थी जी की ग़ज़लों पर माहौल के अलावा गालिब और इकबाल का असर भी रहा है।

दूसरे सत्र में श्रीनिवास श्रीकांत ने 'हिमाचली पहाड़ी में लिखित नाटक-समीक्षा' विषय पर आलोचनात्मक ढंग से शोध पत्र प्रस्तुत किया जिसकी सराहना लगभग सभी लेखकों ने की। श्री श्रीकांत ने इस बात पर जोर दिया कि हिमाचली पहाड़ी नाटक अभी अपने शैशव काल में है। छन्नाट पुस्तक में प्रकाशित संस्कृत नाटकों के हिन्दी में अनुवाद बहुत ही शाब्दिक अर्थ लिए हैं। सोलासिंगी पुस्तक में एकांकियां पहाड़ी परिवेश को समाए हैं और उनमें नाटकीयता है। प्रदेश में पहाड़ी नाटक इसलिए भी नहीं पनप पाया क्योंकि यहां अच्छे प्रेक्षागृह व साधनों की कमी है। पहाड़ी नाटक की उन्नति के लिए लेखकों ने नाटक प्रतियोगिताओं का आयोजन, अन्य भाषाओं के नाटकों का पहाड़ी रूपान्तर आदि अनेक सुझाव दिए। इस गोष्ठी की अध्यक्षता विद्वान साहित्यकार श्री मौलू राम ठाकुर ने की। उन्होंने श्री श्रीनिवास के पत्र की सराहना करते हुए अपने विचार रखे कि पत्र प्रस्तुत करने वाले शोधकर्ता को अकादमी से अन्य सामग्री के अलावा 'हिमभारती' के पुराने अंक भी जुटाने चाहिए थे। उनमें तथा प्रेखण (सम्पादित) पुस्तक में भी पहाड़ी में अच्छे नाटक प्रकाशित हुए हैं।

सर्वश्री सरदारी लाल नश्तर, मनशा राम शर्मा अरुण, काहन सिंह जमाल, बिहारी लाल बहार, अवतार एनगिल, हरिप्रसाद सुमन, डॉ. वासुदेव शर्मा, डॉ. हरिराम जस्टा, डॉ. खुशीराम गौतम, श्रीमती कमला वर्मा कमला, कु. स्नेहलता भारद्वाज इत्यादि लेखकों और कवियों ने भाग लिया।

पुस्तक समीक्षा :—

# फूल और आंसू : आस्थावादी स्वर की अनुगूंज

समीक्षक - कीर्तिकेसर
१०८६/ई, गोबिन्द गढ़, जालन्धर

'फूल और आंसू' ठाकुर दत्त शर्मा 'आलोक' की प्रथम काव्य-कृति है जिसमें उनकी अनेक कविताएं संग्रहीत हैं। यह कविताएं अधिकतर किशोर जीवन की अनुकृतियां हैं जिनमें भावनाओं का स्पंदन और किशोर मन की सहज कल्पनाओं की मनोहर एवं शालीन अभिव्यक्ति हुई है। छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से आशा और निराशा के बीच भटकती मानव मन की आस्थां का भी सुंदर विमोचन हुआ है। आस्था इस पदार्थवादी युग का सबसे बड़ा अनुत्तरित प्रश्न है। इस प्रश्न की प्रासंगिकता भारतीय समाज के जीवन में आज भी उतनी ही है जितनी कभी मध्य युग में रही होगी। आस्थावादी स्वर मध्य युग में मनुष्य समूह को सद्‌गुणों की ओर प्रेरताथा और आज उसका प्रयोग पदार्थवादी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए एक औजार के रूप में होता है क्योंकि मध्य युग में इस सूत्र की पकड़ जहां धार्मिक शक्तियों के हाथ में थी आज वही पकड़ आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के हाथ में आ गई है। अत: आस्थावादी शक्तियां जो अपनी भावुकता के अंधेरों से ग्रस्त जीवन की अनेक विसगतियों के बीच भटक रहीं थी अब आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के साथ संलग्न हो कर भोंथरा प्रचार मात्र बन कर रह गई हैं। इनका जो विरूप हम अपने इर्द-गिर्द देख रहे हैं, उससे एक भयावह भविष्य की तस्वीर उभरती है।

इस सारी भयावहता के बीच जब हम युवा कवि आलोक की कोमल-कांत-पदावली, सुंदर भावनाओं और दृढ़ आस्थावादी स्वर को देखते हैं तो लगता है कि हमारी परख के आधार बड़े खुरदरे, उबड़-खाबड़, रेतीले, तपते हुए और दलदल भरे हैं जिन्हें यह कविताएं सह नहीं पाएंगी। इन कविताओं को आलोचना की इस कठोर भूमि पर उतारना इनके साथ घोर अन्याय होगा। जीवन की विरूपताओं को साहित्य में पहचानना और परखना और सौंदर्य-प्रकृति तथा जीवन की सुन्दरता की उपासना दोनों में कोई विरोध नहीं है। यदि जीवन की व्यापकता को देखा जाए तो साहित्य सदा जीवन की आलोचना नहीं स्तुति और स्वाध्याय भी है। यह दोनों ही उद्देश्य बहुमुखी सामाजिक जीवन के दो अलग-अलग किन्तु सामूहिक पहलू हैं। इस दृष्टि से इन कविताओं के कवि की मानस भूमि जो हिमाचल प्रदेश की अद्‌भुत चमत्कारी रूपों से भरी प्रकृति के बीच निर्मित हुई की अनदेखी भी नहीं की जा सकती। प्रकृति के अद्‌भुत सौंदर्य को देखने और मानने वाला कवि आस्थावादी ही होगा क्योंकि उसने प्रकृति के कर्ता और कारण के ही चमत्कार देखे हैं मनुष्य के नहीं देखे। ऐसी ही मनोभूमि से कवि की 'हे ईश', 'ईश्वरीय विभूति' 'ईश्वर रूप', 'शिकायत' 'कर्मों का बंदी मानव', 'ज्ञान की ज्योति' आदि कविताओं का जन्म हुआ है।

'शिकायत', 'पर्दा है', 'उत्तर नहीं मिलेगा', 'बुढ़ापा', 'कर्म आज मेरे अनूठे हैं', 'उपवन का मुरझाया फूल' आदि कविताओं में किशोर कवि जीवन की कुरुभूमि की तपन को महसूस करने लगा है किन्तु वह शिकायत उस प्रभु से ही करता है जिसने कुरुक्षेत्र में ही बता दिया था कि जीवन के सुख-दुख तेरे कर्मों के अधीन हैं और कर्मों के फल भी तेरी अपनी इच्छा के अधीन नहीं है। किन्तु इन कविताओं में कवि की मनोभूमि में बड़ा परिवर्तन आया दिखाई देता है। यह परिवर्तन उसे जीवन के दर्शन मात्र और दु:खी होने की स्थिति से उठाकर 'प्रश्न क्या है?' की प्रश्न स्थली में पहुंचा देता है और वह कह उठता है।

'बालक मत पूछो यह प्रश्न कि
आदर्श क्या है?

(शेष पृष्ठ ९२ पर देखें)

# अकादमी-गतिविधियां मई १९८९ से जुलाई १९८९ तक

**साहित्यिक गतिविधियां**

१२ मई, १९८९ को बचत भवन हमीरपुर में बाल साहित्य लेखक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डॉ. मनोहर लाल जी ने 'हिमाचली साहित्यकारों द्वारा रचित बाल साहित्य एक मूल्यांकन' तथा डॉ. वेद प्रकाश अग्नि ने 'हिमाचली पहाड़ी में बाल साहित्य उपलब्धि व समस्याएं' विषय पर विषयपत्र प्रस्तुत किये।

**२२ एवं २३ मई, १९८९ :** बचत भवन शिमला, में 'लघु कहानी शिविर' का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कहानीकार श्री निर्मल वर्मा ने की। शिविर में अंग्रेजी, हिन्दी और पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी, उर्दू के कई ख्याति प्राप्त कहानीकारों ने भाग लिया जिसमें सर्वश्री करतार सिंह दुग्गल, पिताम्बर देव शर्मा, विजय सहगल, मोहन भण्डारी, महाराज कृष्ण काव, श्री निवास जोशी, खेमराज गुप्त सागर, मोती लाल घई, चन्द्र शेखर बेबस, डॉ. सोम.पी. रंचन, शीतांशु भारद्वाज, सुंदर लोहिया, डॉ. सुशील कुमार फुल्ल, केशव, श्रीमती राजी सेठ, पद्मा सचदेव आदि उल्लेखनीय हैं।

**१६ जून, १९८९ :** कमलाह (नादौन) जिला हमीरपुर में प्रो. नारायणचंद पराशर की अध्यक्षता में अकादमी के सहयोग से एक स्थानीय संस्था द्वारा कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया।

**११ जुलाई, १९८९ :** देहरा ज़िला कांगड़ा के किसान भवन में पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम जयन्ती समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर आयोजित लेखक गोष्ठी में डॉ. नीलमणि उपाध्याय ने 'पहाड़ी (हिमाचली) कविता में छन्द विधान तथा गेयता एक समीक्षा' तथा श्री सी.आर.बी. ललित ने प्रदेश का भाषायी तथा सांस्कृतिक सर्वेक्षण-समस्याएं एवं उपलब्धियां' विषय पर विषयपत्र प्रस्तुत किये और द्वितीय सत्र में पहाड़ी कवि गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।

**२५ जुलाई, १९८९ :** टाउन हॉल शिमला में जम्मू से केन्द्र सरकार की सीमांत विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत हिमाचल के भ्रमण पर आए जम्मू के एक साहित्यकार दल के सम्मान में एक अनौपचारिक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में साहित्यिक आदान-प्रदान की योजनाओं पर चर्चा हुई। तत्पश्चात् स्थानीय कवियों ने काव्य पाठ किया।

**अकादमी साहित्य पुरस्कारों की घोषणा**

अकादमी द्वारा वर्ष १९८७-८८ के लिए साहित्य पुरस्कारों की घोषणा कर दी गई है। वर्ष १९८७ के लिए हिन्दी काव्य वर्ग में श्री तुलसी रमण को उनकी पुस्तक 'ढलान पर आदमी' हिन्दी उपन्यास, कहानी नाटक वर्ग में श्री बद्रीसिंह भाटिया को उनकी पुस्तक 'पड़ाव' पहाड़ी कहानी नाटक और उपन्यास में श्री अश्विनी गर्ग को उनकी पुस्तक 'दृश्यावली' के लिए दिये हैं। वर्ष १९८८ के लिए पहाड़ी काव्य विधा में डॉ. गौतम व्यथित को उनकी पुस्तक 'गास्सें हथ पुजाणे कियां', हिन्दी कहानी, उपन्यास नाटक विधा में कर्नल विष्णु शर्मा को उनकी पुस्तक 'वर्षा आ गई अचानक' हिन्दी लोक साहित्य संस्कृति, शोध और समीक्षा विधा में श्री अमरसिंह रणपतिया को उनकी पुस्तक 'हिमाचली लोक साहित्य' तथा संस्कृत साहित्य में डॉ. नरदेव शास्त्री को उनकी पुस्तक 'पाणिनीय शब्दार्थ-सम्बन्ध सिद्धांत' के लिए दिया गया है।

**१७ मई, १९८९ :** को अकादमी के तत्वावधान में माण्डव कला मंच (बल्ह) ज़िला मण्डी ने बंजार मेला कुल्लू के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

**५ जून से २० जून, १९८९** तक अकादमी के तत्वावधान में शास्त्रीय संगीत कार्यशाला का आयोजन किया गया। जिसका निदेशन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सितार वादक प्रो. देबू चौधरी ने किया। कार्यशाला में सितार वादन के लिए प्रशिक्षण प्रो. देबू चौधरी तथा कण्ठ संगीत में प्रशिक्षण ग्वालियर घराने के ख्याति प्राप्त गायक श्री एल.के. पंडित ने दिया। इस कार्यशाला में प्रदेश भर के चौदह कलाकारों का साक्षात्कार के बाद चयन किया गया। अन्य कलाकारों ने स्वेच्छा से प्रशिक्षण लिया। इस अवसर पर पूरे कार्यक्रम की विडियो फिल्म तैयार की गई और गतिविधियों के टेप तैयार किये गये।

---

(पृष्ठ ९० का शेष)

**मेरे पास इसका उत्तर**
**केवल आज**
**समाज का झूठा दिखावा है।**

'घायल हुआ हूँ' जैसी कविताओं में उसने जिंदगी की मार और 'मन की हार' में जीवन में हार का अहसास पाया है। पर यह अहसास भी स्वपनिल प्रेम और भावनाओं और कल्पनाओं के रंग में ही अधिक रंगा हुआ है। उसका मन गुलाब के फूल जैसा है जो उपवन में खिला है झूमा है, उसने भंवरे का स्वार्थ देखा है, पवन के कठोर थपेड़े खाए हैं पर कांटों की चुभन पतझड़ की निर्ममता और मनुष्य के हाथों में पड़ कर बिखरने का कुरुक्षेत्र अभी नहीं झेला है। किन्तु उस कवि के पास जीवन को निस्पृहता के साथ देखने वाला तीसरा नेत्र है और अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए आवश्यक सुंदर शालीन् भाषा भी है। उसकी भाषा में तत्सम शब्दावाली का माधुर्य-रसपान किया जा सकता है। संस्कृत काव्य-प्रवृत्ति का प्रभाव 'आलोक' की भाषा पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इनकी कविताओं को पढ़ कर यह संतोष भी होता है कि नगरीय संस्कृति के विकास के बीच भी मानव प्रकृति में सौंदर्य की उपासना' का तत्व अभी शेष है जो नगर संस्कृति की संभावित जड़ता से मानवीय संवेदना की रक्षा का उपक्रम बन सकेगा। परंतु इस परमोद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवि को जीवन के रणक्षेत्र में जूझना होगा।

**आलोच्य पुस्तक 'फूल और आंसू' (कविता संग्रह)**

**लेखक ठाकुर दत्त शर्मा आलोक,**

**प्रकाशक हिन्दुस्तान प्रकाशन शिमला**

**मूल्य आठ रुपए, सं. १९८०**

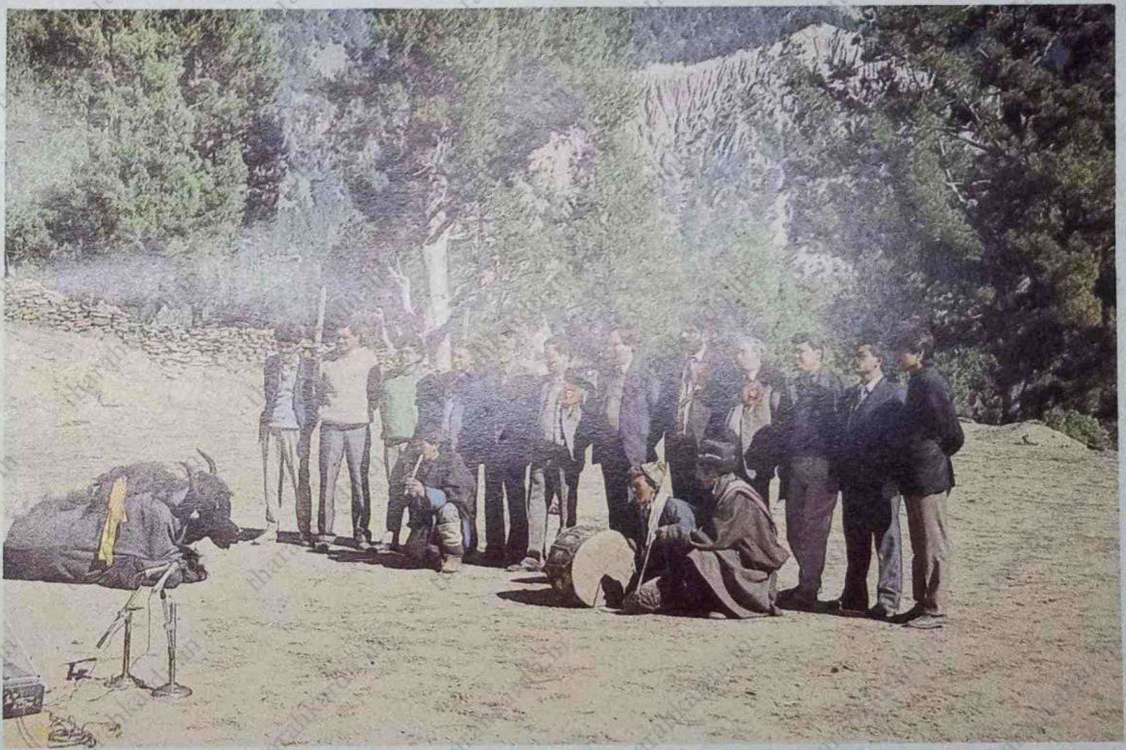

रिकांगपिओ (किन्नौर) में आयोजित ''जनजातीय समारोह 88'' में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी व हिमाचल अकादमी का प्रलेखन दल

HAACL पंजीकरण संख्या-28271/75

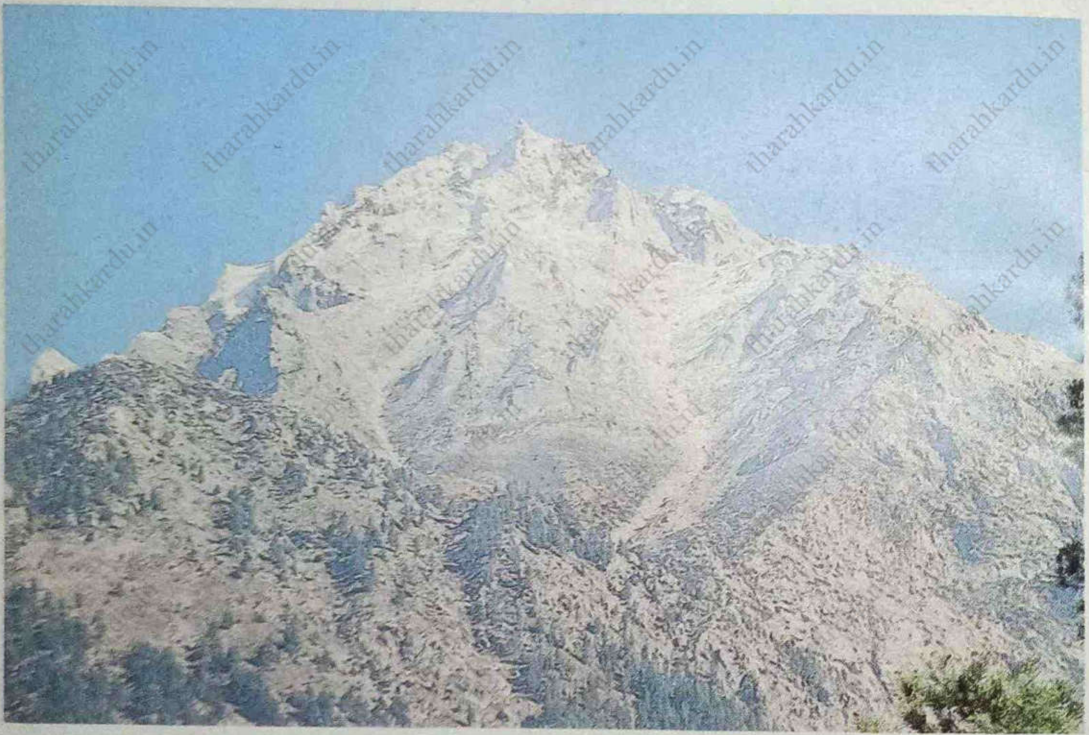

जनजातीय क्षेत्र किन्नौर का एक भू-दृश्य

सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा प्रकाशित और
मैसर्ज एस.बी. प्रिंटर्ज, नयी दिल्ली- द्वारा मुद्रित

tharahkardu.in